योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 56 ; अंक : [illegible]
फरवरी-मार्च 2024

प्रकाशन तिथि : 01.03.2024

मूल्य = एक प्रति: 25/= , वार्षिक : 250/=

अमृतकण

धन्या माता पिता धन्यो धन्यो वंशः कुलं तथा
धन्या च वसुधा देवि गुरुभक्तियुतस्य वै

हे देवी ! गुरु भक्ति दुर्लभ है। जिसके हृदय में गुरु भक्ति का उदय है उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उनका वंश तथा कुल धन्य है और जहाँ वह वास करता है वह पृथ्वी भी धन्य है।

◆ ◆ ◆

शरीरमिन्द्रियं प्राणा अर्थः स्वजनबांधवाः
माता पिता कुलं दैवं गुरुरेव न संशयः

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, धन, स्वजन, बांधव, माता, पिता, कुल और देव गुरु ही है इसमें संशय है।

◆ ◆ ◆

आकल्पजन्मनः कोट्यां यज्ञव्रततपक्रियाः
तत्सर्वं सफलं देवि गुरु सन्तोषमात्रतः

हे देवी ! कल्प से लेकर करोड़ों जन्मों तक किये हुए यज्ञ तप, व्रत और क्रिया ये सब गुरुदेव के संतोष मात्र से सफल है।

◆ ◆ ◆

विद्याधनमदेनैव मन्दभाग्याश्च ये नराः
गुरुसेवां न कुर्वन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम्

जो मनुष्य विद्या और धन के मद से गुरु की सेवा नहीं करते वे मंद भाग्य वाले हैं। हे देवी ! मैं सत्य कहता हूँ।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 56 फरवरी-मार्च 2024 अंक : 11-12

आददीत परां विद्या प्रयत्नादवरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्म स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।

अर्थात् स्त्री रत्न को भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाण्डाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।

●●●

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख**- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	03
2.	**सम्पादकीय**	07
3.	**श्रीमद्भागवत में योगपरिचर्चा**- डॉ. विजय सिंह	10
4.	**लीला धारी की लीलाएँ न. 11**- श्री जगदीश राए बंसल	14
5.	**संयम द्वारा प्रातिभज्ञान तथा सिद्धियाँ**- प्रो. ऋषिराम शर्मा	18
6.	**कर्म फल**- श्री कृष्ण कुमार पाण्डेय	21
7.	**गुरु-भक्ति ही सच्ची सिद्धि**- श्री अन्तू राम यादव	25
8.	**श्री मद्भगवद् गीता में सनातन का वर्णन**- डॉ. दासलाल शर्मा	28
9.	**ईश्वर-प्रणिधान से समाधि-लाभ**- श्री मनमोहन कृष्ण त्रिखा	29
10.	**मन रूपी दर्पण**- श्रीमती सरिता भारद्वाज	33
11.	**मासिक विवरण**	40

एक प्रति	: रु. 22.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 230.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1500.00

हमारा विशेष लेख-

संकीर्तन मन की एकाग्रता का ठोस साधन

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ध्वनि भी मन की एकाग्रता का कारण बन सकती है। **" नास्ति नाद सदृशो लय: "** के नियमानुसार नाद समाधि का एक ठोस साधन है। अभी संकीर्तन हो रहा था कुछ बच्चों की आँखें बन्द थीं और संकीर्तन बोल रहे थे कुछ बच्चे आँखें खोलकर बैठे हुए थे। मेरा यह अनुभव है कि यदि ठीक ढंग से ध्वनि उठाकर के संकीर्तन किया जाये तो इससे बहुत जल्दी मन की एकाग्रता हो जाया करती है। जहाँ- जहाँ ऐसा हुआ वहाँ एकाग्रता लोगों की बनी। जिस समय मैंने पहले पहल संवाई आश्रम में योग प्रचार करना आरम्भ किया उसमें जो व्याख्यान का क्रम था यह बहुत बाद में शुरू हुआ किन्तु पहले ध्वन्यात्मक संकीर्तन हुआ करता था। मैंने एक दिन देखा इस प्रकार से संकीर्तन से चालीस व्यक्ति समाधिस्थ थे जिनके मनों के अन्दर एकाग्रता थी जो काफी लम्बे समय के बाद ध्यान से उठे। यहाँ तुम देख रहे थे एक देवी, संकीर्तन करते-करते गिर पड़ी थी। पास वालों के उठाने पर भी वह नहीं उठी। जैसा कि मैंने तुम्हें अभी बताया कि योग प्रचार के आरम्भ के दिनों में व्याख्यान अधिक नहीं दिया करते थे किन्तु साधकों के जीवन को यथार्थ रूप से बनाने की चेष्टा करते थे। जिला करनाल में कुराना गाँव में हमने संकीर्तन कराना आरम्भ किया। यह गाँव मेरी जन्मभूमि अलुपुर के पास में ही है। उस समय के संकीर्तन में भी लोगों के मनों में बहुत एकाग्रतायें प्राप्त हुई। कुराने में भी जैसे संवाई गुफा में संकीर्तन में लोग बेहोश हो जाया करते थे उसी प्रकार से लोग काफी संख्या में कीर्तन करते-करते बेहोश हो जाया करते थे और एकदम ध्यानस्थ हो जाया करते थे। उनमें कुछ लोग आज भी हैं। उसी-संकीर्तन के प्रभाव से उनकी ध्यान स्थिति बढ़ती चली गई। उस संकीर्तन का प्रभाव यहाँ तक बढ़ा कि पशुओं पर भी उसका प्रभाव होने लगा। कुराने में हमारे मास्टर हरि प्रसाद इस बात को जानते हैं। वहाँ कुराने में आश्रम की बाहरी दीवार के साथ ही किसान लोग बैलों से कोल्हू पिराया करते थे और गन्ने का रस निकाल कर गुड़ बनाया करते थे। आज तो इस प्रकार का रिवाज नहीं रहा है। वहाँ एक किसान के कोल्हू पिराने की बारी उसी समय आती थी जब हमारा संकीर्तन चलता था। संकीर्तन की ध्वनि के प्रभाव से उसका बैल खड़ा हो जाता था उसकी आँखें ऊपर चढ़ जाती थीं और मारने पीटने पर भी वह आगे नहीं बढ़ता था। उस किसान ने मुझ से आकर कहा कि आप यह **" नमामी शम्भो "** बन्द कर दें। मैंने कहा- क्यों बन्द कर दें ? वह कहने लगा-हमारा बैल ध्वनि सुनते ही खड़ा हो जाता है और हम अपनी बारी का लाभ उठा नहीं पाते। हमने उससे कहा- भाई ! तू अपनी बारी दिन में ले लें । हम अपना संकीर्तन उसी समय करेंगे। घरों के मेहतरों के लड़के भी संकीर्तन बोला करते थे और उनके मनों में ही एकाग्रता पैदा हुई। एक मेहतर के लड़के को इसी संकीर्तन के प्रभाव से दिव्यानुभूतियाँ जारी हो गई। उस एकाग्रता में उसने अनुभव किया कि अमुक अशुभ कर्म के कारण मुझे मेहतरों

के घर में जन्म लेना पड़ा है उसे यह भी ज्ञान हो गया कि उसका यह शरीर कितने दिन और रहेगा। उसने अपने अनुभव की बात औरों से भी कही। उसने बताया कि आज से उन्नीसवें दिन मेरा यह शरीर छूट जायेगा और अमुक गाँव में एक ब्राह्मण के घर में मेरा जन्म होगा। उसकी बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया। अन्त में उन्नीसवें दिन उसने कहा– आज मैं अपने इस शरीर को छोड़ दूँगा। गुरु जी तो शायद हमारे घर में आयेंगे नहीं तुम हमारे मास्टर जी (हर प्रसाद) जो हमें पढ़ाया करते हैं उनको यहाँ बुला लाओ। घर वाले मास्टर हर प्रसाद को घर बुला ले गये। उसने मास्टर हर प्रसाद को बताया– अब मैं दो चार घण्टे का मेहमान हूँ। उसके बाद मैं अपने इस शरीर को छोड़ दूँगा और अमुक गाँव में अमुक ब्राह्मण के घर मेरा जन्म होगा। पिछले जन्म के क्लिष्ट कर्म के कारण इस घर में आना पड़ा था। निश्चित समय पर उसने शरीर छोड़ दिया और जहाँ उस लड़के ने बताया था वहाँ उस ब्राह्मण के घर एक वर्ष बाद एक लड़के ने जन्म ले लिया। यह सब हमारे उस संकीर्तन का प्रभाव था जिससे उसे अगले पिछले जन्मों के संस्कारों का साक्षात्कार हो गया। अस्तु ! मुझे अपने पहले के समय की लाहौर की बातें याद आ रही हैं। मेरी तो बार–बार भावना बनी रहती है कि मैं एक बार लाहौर जाकर अपने पुराने स्थानों को देख आऊँ। लाहौर में हमारा तीन स्थान पर आश्रम रहा। सबसे पहले परीमहल में रहा। इसके बाद कृष्ण गली नं. 2 में रहा और रावी रोड पर मेहता हाफटोन कं. वालों ने जमीन दी थी कुछ कमरे भी उन्होंने बनाकर दिये थे। एक बार अमृतसर में हुकुम चन्द ने आकर कहा ! महाराज जी ! आप लाहौर में आश्रम क्यों नहीं बनाना चाहते। लाहौर तो बड़ी जगह है वहाँ पर ही आश्रम बनना चाहिए। आप को तो अपने जन्म स्थान की ममता है। श्री प्रभुजी ने हुकुम चन्द से कहा – हुकुमचन्द ! यह जो तुम्हें रावी रोड पर जमीन मिली है यह भी एक दिन तुम्हारे पास नहीं रहेगी वहाँ आश्रम बनाना तो पैसा खराब करना ही है। श्री प्रभुजी ने भारत–पाकिस्तान बंटवारे की बात पहले ही बता दी थी। सब से पहले मेरे बड़े गुरु भाई ब्र. गोपालानन्द जी ने परीमहल आश्रम में योग प्रचार करना आरम्भ किया।

संकीर्तन भी साथ– साथ चलता था। कृष्ण गली नं. 2 में जो आश्रम था उसका मालिक एक दिन ब्र. गोपालानन्द जी के पास आया कि हमारा वह मकान आप ले लें। हम दो तीन वर्ष तक तो कोई किराया नहीं लेंगे उसके बाद जो भी आप दे देंगे हम ले लिया करेंगे किन्तु एक बात यह है कि वहाँ जो भी रहता है मर जाता है। वहाँ भूत पत्थर बरसाते हैं इसलिए वहाँ कोई रहता नहीं है। ब्र. गोपालानन्द जी ने कहा– ठीक है हम उस मकान को ले लेंगे। ब्र. गोपालानन्द जी ने उस मकान में एक बड़ा सा हाल चुन लिया और उसमें छः महीने का अखण्ड संकीर्तन रख दिया। दिन रात भगवत् संकीर्तन चलता था। मैंने तुम्हें एक दिन पहले भी बताया था कि ब्र. गोपालानन्द जी के लिये वरदान था कि जहाँ भी संकीर्तन करायेंगे वहाँ लोगों को मन की एकाग्रता हो जायेगी। कृष्णा गली नं. 2 में सब संकीर्तन चलता था उस समय मैंने एक दिन देखा सैकड़ों व्यक्ति बेहोश पड़े थे। एक और आर्य समाज के बहुत अच्छे प्रचारक स्वामी सत्यानन्द जी को भी हमने अपने संकीर्तन में बेहोश देखा था। स्वामी सत्यानन्द जी ने स्वामी दयानन्द की जीवनी " दयानन्द प्रकाश " लिखी है। इस प्रकार स्वामी जी की श्रद्धा बढ़ती गई और उन्होंने " भक्ति प्रकाश " नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने राम नाम की महिमा लिखी। उन्होंने अपने उस पुस्तक में हमारे संकीर्तन का भी जिक्र किया है। ब्र. गोपालानन्द जी ने अखण्ड संकीर्तन

करके उस कमरे को सिद्ध कर लिया और यह नियम बना दिया कि वहाँ केवल ध्यानाभ्यासी ही ध्यान में बैठें। पचीस तीस ध्यानाभ्यासी वहाँ बैठे रहा करते थे जिनका ध्यान वैसे नहीं लगता था वहाँ पर बैठने से लग जाता था। इस प्रकार बहुत से योगी ध्यानी वहाँ से बन गये। कृष्णा गली नं. 2 के बाद हमारा आश्रम रावी रोड पर भी रहा किन्तु उस समय ब्र. गोपालानन्द जी का देहावसान हो गया। मैं जिस बात को बताना चाहता हूँ वह यह कि संकीर्तन करते हुये जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसकी उत्पत्ति उस एक तत्व से होती है।

एकतत्व का अभिप्राय सद्गुरु तत्व से है। कीर्तन करते–करते ही यदि ढंग से बोलोगे, लय और ध्वनि के साथ " नमामि शम्भो, नमामि शम्भो " का उच्चारण करोगे तो तुम देखोगे कि तुम्हारे अन्दर भी बेहोशी आने लगेगी। उस बेहोशी में एक तत्व रहता है। जिस प्रकार से अभी एक देवी बेहोश होकर गिर पड़ी थी उसी प्रकार तुम्हारी भी हालात हो जायेगी। हम अपने योग प्रचार कार्यक्रमों में श्री प्रभु जी के यौगिक चरित्र सुनवाया करते हैं तथा संकीर्तन का भी कार्यक्रम चलता है। यह मन की एकाग्रता का एक ठोस साधन बन जाता है यदि हम अपने मन को एकाग्र करके मन का उच्चारण करते हैं तो मन अवश्य एकाग्र हो जायेगा। हम श्री प्रभुजी का स्वरूप सामने क्यों रखते हैं। देखो ! मद्रास की रानी पद्पावनी ने काम कोटि के शंकराचार्य स्वामी श्री चन्द्र शेखर सरस्वती के पास श्री प्रभु जी का चित्र लेकर उनसे पूछा था– यह चित्र कैसा है ? उन्होंने कहा ये स्वयं नारायण हैं । फिर कहने लगे इस चित्र में हजारों को एक साथ मुक्ति देने की ताकत है। अर्थात मात्र प्रभु जी के स्वरूप को देखकर ध्यान में बैठ जाओगे तो तत्वाभ्यास हो जायेगा। इसके बाद जिनका मन ध्यान में न लगता हो उनका भी मन एकाग्र हो जायेगा। ध्यान बढ़ने लगेगा, आत्मिक शान्ति बढ़ती चली जायेगी। इसलिये हम तुम्हें कहा करते हैं कि प्रभु जी के स्वरूप को सामने रखकर उनको प्रणाम करके ध्यान में बैठ जाया करो। बस ! ऐसा करने से एकाग्रता आ जायेगी। तुम लोगों ने जहाँ से भी, जो भी मन्त्र लिया हो, उसे मेरुदण्ड को सीधा रखकर लगातार जपो ! निरन्तर जाप करने से मन एकाग्र हो जाया करता है। मन्त्र बहुत अधिक लम्बा नहीं होना चाहिए। योगियों ने प्रणव मन्त्र **'ओम्'** के जाप को श्रेष्ठ बताया है। जपने के लिये छोटे से छोटा मंत्र होना चाहिए। बीज मंत्रों का जाप मन की एकाग्रता को देता है। यदि किसी ने कहीं से कोई मंत्र न मिला हो तो **नमः शिवाय नमः शिवाय** का जाप करते रहो। मंत्र जाप में साधक को तीन प्रकार की कृपायें मिलती हैं। एक तो शक्ति मिलती है उस मंत्र के देवता की इष्टदेव की दूसरी सहायता उन सब सिद्धों को मिलती है जिन्होंने उस मंत्र का जाप करके सिद्धि प्राप्त की हैं तथा तीसरी कृपा गुरुदेव की मिलती है, जिन्होंने मंत्र का उपदेश दिया है। इस प्रकार मंत्र को मेरुदण्ड को सीधा रखकर प्रतिदिन दो तीन घण्टे जप लिया करोगे तो धीरे–धीरे अन्तः प्रकाश प्रकट हो जायेगा। देखो ! जब तुम माँ के पेट में पड़े हुये थे तो तुमने भगवान से प्रतिज्ञायें की हुई हैं ! सातवें माह में गर्भ में जीव को ईश्वर दिव्य दृष्टि देता है जिससे उसे अगले पिछले जन्मों का तथा उनमें होने वाले सारे दुःखों का ज्ञान हो जाता है। पेट में पड़ा हुआ जीव ईश्वर से प्रतिज्ञा करता है।

यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणम्

अशुभ क्षय कर्तारम् फल मुक्ति प्रदायकम्।।

यदि मैं इस नरक से छूट गया तो नारायण की शरण में जाऊँगा, महेश्वर की शरण में जाऊँगा जो सारे अशुभ का नाश कर मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

आगे कहते है–

यदि योन्या: प्रमुच्येऽहं सांख्ययोगमभ्यसे।

अर्थात् यदि मैं गर्भ से बाहर आ जाऊँगा तो मैं सांख्य योग का अभ्यास करूँगा जिससे मैं अपने शाश्वत स्वरूप को प्राप्त हो जाऊँगा। इस प्रकार से नाना प्रकार से ईश्वर से प्रतिज्ञायें करता है। किन्तु पेट से बाहर आते ही सब कुछ भूल जाता है। इसलिये जब तक शरीर स्वस्थ है, बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियों में शक्ति है योगाभ्यास की कमाई कर लो। गुरु मंत्र का खूब जाप करो! गुरु तो ऐसी चीज है भीतर से शक्ति मिलती है। कुछ हाथ पैर तो हिलाओ। परमात्मा सबका गुरु है प्रयत्न करने वालों की सहायता अवश्य बनेगी। कम से कम इतना तो कर लो मनुष्य जन्म दोबारा मिल जाये। इसलिये ध्यान योग का अभ्यास करो। प्रभु जी की कृपा होगी सबका भला होगा!

बार बार आशीर्वाद।

सम्पादकीय-

सिद्धयोग- हमारी प्यारी पत्रिका

आचार्य (डा०) रामलाल शर्मा

प्रिय पाठकगण/गुरु भाई-बहिन,

जय गुरुदेव की !

क्षण-क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग ' अपनी आयु के 56 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 57 वें वर्ष में प्रवेश कर जाएगी। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्त्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ-साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र- पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धान्तिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है- **आत्मा व अरेद्रष्टव्यः, श्रोतव्यः मनतव्यः निदिध्यासितव्यः।** अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान-योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रंथों में शक्तिपात की अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमंत्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान ने सिद्धयोग परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गई। पत्रिका के पठन-पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन

मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नहीं है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं– " **संशयात्मा विनश्यति** " अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए " **सिद्धयोग** " श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि – **स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमंत्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेव जी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई– बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में, मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क रु. 230/– हो गया है तथा आजीवन शुल्क रु. 1500/– हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सँवाई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

श्री रामनवमी योग महोत्सव दिनांक 15, 16 व 17 अप्रैल 2024 को मनाया जाना निश्चित हो चुका है।

सभी गुरु भक्तों को चाहिए कि श्री रामनवमी के पवित्र उत्सव पर धाम पर पहुँचें तथा गुरुदेव की कृपा को प्राप्त करें। जो यह मानते हैं कि गुरुदेव तो हैं नहीं वहाँ जाकर क्या करेंगे यह उनकी महान भूल है। गुरुदेव की शक्ति तो अनवरत बरसती रहती है गुरुदेव कहा करते थे कि श्री सिद्धगुफा से ही सारी दुनिया को योग का प्रकाश मिल रहा है। अत सभी आश्रम की शाखाओं के संचालकों को चाहिए स्वयं भी आवें और अन्य गुरु भक्तों को भी पवित्र धाम के दर्शन करावें ताकि योग ध्यान में उत्तरोत्तर उन्नति पा सकें। जीवन में यदि आत्म दर्शन पा लिया तो अत्युत्तम

बात है अन्यथा ' महती विनष्टि ' महान संपात की बात है– बहुत बड़ी हानि की बात है। अतः आत्मदर्शन का लक्ष्य सामने रखते हुए **'कार्यम् वा साधेयम् देहं वा पातेयम '** अर्थात् या तो आत्मसिद्धि रूप महान कार्य को सिद्ध करूँगा या मेरा देह पात हो जाए तब भी कोई चिन्ता न मानते हुए सतत् आत्म लाभ की ओर अग्रसर रहना चाहिए। भौतिक भोगवाद प्रपञ्च है अपने साथ धोखा है। अतः सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणपण से लग जायें।

अन्त में, मैं उन सभी सुधी लेखक बन्धुओं, विद्वानों को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनके सुन्दर एवं योग परक लेखों के कारण पत्रिका की गरिमा व लोकप्रियता बनी हुई है। जो इसके– ग्राहकों को प्रेरणा देकर उन्हें लाभ पहुँचा रहे हैं वे भी धन्यवाद के भागी हैं तथा स्तुत्य हैं।

जय गुरुदेव जी की ।

आपका
डॉ. दासलाल योगाचार्य
सम्पादक– सिद्धयोग

आवश्यक सूचना

मार्च अंक के साथ ही साधकों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो जाता है। अतः ग्राहकों को नये वर्ष के लिये मार्च 2024 तक अपने शुल्क कार्यालय में जमा कर देना चाहिए। पत्रिका का वार्षिक शुल्क रु. 230 हो गया है और आजीवन शुल्क (10 वर्षीय) 1500 रु. है। इसके साथ ही विद्वान लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी योग परक सुन्दर लेख भेजते रहें। यही साधकों की गुरु दक्षिणा होगी। सभी को पत्रिका का ग्राहक बनना चाहिए। गुरुदेव से जुड़े रहने का यह सशक्त माध्यम है। स्वाध्याय पुण्य अर्जन का मुख्य साधनों में से एक है। अतः स्वाध्यायरत रहना चाहिए हर साधक को।

सम्पादक सिद्धयोग मासिक
श्री सिद्धगुफा, संवाई,
एत्मादपुर (आगरा) – 283202

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्रीमद्भागवत में योग परिचर्या

डॉ. विजय सिंह

किसी वस्तु, काल का विषलेशण करते समय दार्शनिक तीन तलों पर चिंतन करते हैं। अधिभूतात्मक विश्लेषण, आधिदैविक और आध्यात्मिक परिशीलन। इसी प्रकार दो प्रकार से काल और गुणों की विवेचना किया गया है। समष्टि गत और व्यष्टिगत। चारों युगों का समष्टिगत प्रभाव का वर्णन भगवान श्री शुकदेव जी ने तीसरे अध्याय में परीक्षित को बतलाया है। अब उन्हीं युगों का व्यष्टिगत प्रभाव के बारे में आगे बतलाते हैं।

सभी प्राणियों में तीन गुण होते हैं। सत्त्व, रज और तम। काल की प्रेरणा से समय–समय पर शरीर प्राण और मन में इन गुणों का ह्रास और विकास हुआ करता है। जिस समय मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सत्वगुण में स्थित होकर अपना–अपना काम करने लगती हैं, उस समय उस व्यक्ति विशेष का सत्ययुग समझना चाहिये। सत्त्वगुण की प्रधानता के समय मनुष्य ज्ञान और तपस्या से अधिक प्रेम करने लगता है।

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च।
तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद् रुचिः ।।

27.3.12

परीक्षित ! जिस समय कोई मनुष्य की प्रवृत्ति और रुचि धर्म अर्थ और लौकिक– पारलौकिक सुख – भोगों की ओर हो। तब शरीर, मन, इन्द्रियाँ रजोगुण में स्थित होकर काम करने लगती है उस समय व्यक्ति विशेष त्रेतायुगीन प्रभाव में होता है।

यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम्।
तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन्।।

28.3.12

जिस समय लोभ, असंतोष, अभिमान, दम्भ और मत्सर आदि दोषों का बोल–बाला हो और मनुष्य बड़े उत्साह के साथ सकाम कर्मो मे सन्लग्न हो, उस समय द्वापर युग के प्रभाव में होता है। रजो गुण एवं तमोगुण मिश्रित होकर द्वापर युग का काल उस व्यक्ति विशेष को प्रभावित कर रहा होता है।

यदालोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः।
कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद् रजस्तमः।।

29.3.12

व्यक्ति जब झूठ, कपट, तन्द्रा–निन्द्रा, हिंसा– विषाद, शोक–मोह, भय और दीनता से युक्त हो तब उसे तमोगुण प्रधान कलियुग में समझना चाहिये।

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम्।
शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः।।

30.3.12

समष्टि पर कलियुग का पुनः जो प्रभाव पड़ता है उसका वर्णन श्री शुकदेव जी आगे करते हैं। जब कलियुग का राज्य होता है तब लोग क्षुद्र वृष्टि वाले हो जाते हैं। उनका भाग्य मंद होता है परन्तु चित्त में कामनायें बड़ी–बड़ी रहती हैं। स्त्रियों में दुष्टता और कुलटापन कूट–कूट के भरा रहता है। लुटेरों की प्रधानता एवं प्रचुरता हो जाती है।

पाखण्डी लोग अपने नये–नये मत चलाकर मनमाने ढ़ंग से शास्त्रों का तात्पर्य निकालने लगते हैं। राजा प्रजा की कमाई चूसने लगता है। ब्राह्मण पेट भरने और जननेंद्रिय सुख में डूबे रहते हैं। ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य से रहित और पवित्रता से कोसों दूर होते हैं। संन्यासी अति लोभी हो जाते हैं।

व्यापारी धोखाधड़ी करने लगते हैं। वे निम्नश्रेणी के व्यापारों को जो निन्दित बताया गया है, उसे ठीक समझने और अपनाने लगते हैं।

प्रिय परीक्षित ! कलियुग के मनुष्य बड़े ही लम्पट और अपनी काम वासना को तृप्त करने हेतु ही प्रेम करते हैं। वे विषयकामी माता–पिता, भाई–बन्धु और मित्रों को छोड़कर केवल ससुराल के साली और सालों से सलाह लेने लगते हैं।

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन् हित्वा सौरतसौहृदाः।
ननान्दृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः।।

37.3.12

शुद्र तपस्वियों का वेष बनाकर अपना पेट भरते और दान लेने लगते हैं। जिन्हें धर्म का रत्तीभर भी ज्ञान नहीं है, वे ऊँचे सिंहासन पर विराजमान होकर धर्मोपदेश देने लगेंगे।

कलियुग में लोग कौड़ियों (अल्प धन) के लिये आपस में बैर – विरोध करने लगते हैं और सद्भाव तथा मित्रता को छोड़ देते हैं। धन के लिये सगे–सम्बन्धियों की हत्या कर बैठते हैं और अपने प्रिय प्राणों से भी हाथ धो बैठते हैं। पुत्र अपने बूढ़े माँ–बाप की भी रक्षा–पालन–पोषण नहीं करते।

परीक्षित ! भगवान सारे जगत के परम पिता और परम गुरु हैं। सभी देव अपना सिर झुकाकर उनके चरणों में सर्वस्व समर्पण करते रहते हैं। वे अनन्त हैं। वे एक रस अपने स्वरूप में स्थित हैं। परन्तु कलि में लोगों का चित्त पाखण्डियों के कारण इतना भटक जाता है कि वे भगवान की पूजा से भी विमुख हो जाते हैं।

कलौ न राजञ्जगतां परं गुरुं

त्रिलोकनाथानतपादपङ्कजम्।

प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं

यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्न चेतसः।।

43.3.12

मनुष्य मरने के समय अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान के किसी नाम का उच्चारण करले तो उसे उत्तम–से–उत्तम गति प्राप्त होती है। परन्तु कलियुग के प्रभाव से लोग भगवान की आराधना से भी विमुख हो जाते हैं।

परीक्षित! कलियुग के अनेकों दोष हैं। सब दोषों का मूल तो अन्तःकरण है ही, परन्तु जब पुरुषोत्तम भगवान हृदय में विराजते हैं तब उनकी महिमा से सब दोष नष्ट हो जाते हैं।

पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यदेशात्मसम्भवान्।

सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः।।

45.3.12

भगवान के रूप, गुण, लीला, नाम के श्रवण, संकीर्तन, ध्यान और पूजन से वे मनुष्य के हृदय में आकर विराजमान हो जाते हैं और जन्म–जन्मान्तरों के पाप राशि को क्षण भर में भस्म कर देते हैं।

श्रुतः सङ्कीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा।

नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम्।।

46.3.12

परीक्षित ! जैसे अग्नि में तपकर सोना से मिश्रित धातु मलीनता निकल जाती है, वैसे ही साधकों के हृदय में स्थित भगवान विष्णु उनके अशुभ संस्कारों को सदा के लिये मिटा देते है।

यथा हेमि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम्।

एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम्।।

47.3.12

परीक्षित ! विद्या, तप, प्राणायाम, मित्रभाव, तीर्थस्नान, व्रतदान और जप आदि साधन से मनुष्य के अन्तःकरण की वैसी शुद्धि नहीं होती, जैसी शुद्धि भगवान् पुरुषोत्तम के हृदय में विराजमान हो जाने पर होती है।

विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री-

तीर्थाभिषेकव्रत दान जप्यैः।

नात्यन्तशुद्धिं लभते अन्तरात्मा

यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते।।

48.3.12

त्रिकालज्ञ भगवान शुकदेव जी कहते हैं– परीक्षित ! अब तुम्हारी मृत्यु का समय निकट आ गया है। अब सावधान होकर पूरी शक्ति से और अन्त:करण की सारी वृत्तियों से भगवान श्रीकृष्ण को अपने हृदय सिंहासन पर बैठा लो। ऐसा करने से तुम्हें परम गति की प्राप्ति होगी। प्यारे परीक्षित। सर्वात्मा भगवान अपना ध्यान करने वाले को अपने स्वरूप में लीन कर लेते हैं, उसे अपना स्वरूप बना लेते हैं। सत्य युग में भगवान का ध्यान करने से, त्रेता में बड़े–बड़े यज्ञों द्वारा भगवान की आराधना करने से और द्वापर में विधि पूर्वक उनकी पूजा–सेवा से जो फल मिलता है, वह कलियुग में केवल भगवन्नाम का आर्त भाव से कीर्तन करने से ही प्राप्त हो जाता है।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।।

52.3.12

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

लीला धारी की लीलाएँ (न. 11)

जगदीश राए बंसल " अधम " मों. 9212434001

गतांक से आगे :–

हमारे सद्‌गुरु देव भगवान, जगत नियन्ता सर्वाधार योग योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपनी पवित्र लेखनी से अपने प्रिय बच्चों को अवगत कराते रहे है कि मेरे सद्‌गुरु देव अर्थात् हमारे दादा गुरुदेव अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक महाप्रभु जी श्री राम लाल जी महाराज की कल्याणकारी अद्‌भुत कृपा लीलाओं को जन साधारण के मध्य परिचय देना विचारक पाठकों के प्रति अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

सिद्धों के महासिद्ध गुरुओं के गुरु श्री रामलाल जी महाराज ने जब भू लोक पर दृष्टिपात किया तब देखा कि ऋषि–मुनियों की ये अनजान सन्तानें पृथ्वी लोक में भोगवाद में ही फंसी हुई अनेक क्लेशों से घिरी हुई हैं। इनको उभारने के लिए अपने संकल्प मात्र से अवतरित हो कर भगवान श्री कृष्ण जी महाराज के सदृश्य लीलाएँ की। अतः जो नर–नारी, योगी–ध्यानी, अशरण–शरण श्रद्धा पूर्वक इन कृपा लीलाओं का स्वाध्याय करेंगे उन पर आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की शीघ्र कृपा वृष्टि होगी और उन्हें ध्यानावस्था लाभ प्राप्त होगा।

कृपा लीलाएँ

ब्र. जी को भगवान श्री कृष्ण दर्शन

एक दिन श्री प्रभु जी ने कहा कि– भगवान कृष्ण का नाम कृष्ण इसलिए पड़ा कि उनमें आकर्षण शक्ति अधिक थी। यह कह कर आनन्द सागर श्री प्रभु जी ने ब्र. श्री गोपालानन्द को ध्यान–मग्न कर दिया। श्री ब्र. जी के मन में श्री कृष्ण भगवान के दर्शन का संकल्प लिया। संकल्प उदय होते ही भगवान श्री कृष्ण के दर्शन हुए। उन्होंने प्रसन्नता से कहा, " कहो पुत्र क्या शंका है ? " ब्र. जी ने कहा– " प्रभो आप आकर्षण – विद्या के ज्ञाता हैं, अतः कृपा कर आकर्षण विद्या बतलाईए। " भगवान ने कहा – सुनो ! हर प्राणी के नासिका न्ध्रों से श्वास धारा के साथ तेजो मय परमाणु निकलते हैं। ये परमाणु , जिसका जितना आत्मोत्थान हो चुका है, उतने अधिक चमकीले और बलिष्ठ होते हैं, जो मात्र ध्यान–दृष्टि से देखे जा सकते हैं। ध्यानावस्था में अपने दिव्य तेजस्वी परमाणुओं से किसी के भी दुर्बल परमाणुओं को खींच कर आकर्षित किया जा सकता है। अपने से तेजस्वी पर यह नहीं चलता।"

ब्र. जी को शबरी दर्शन व मूर्च्छाकुम्भक ज्ञान

उन्हीं के शब्दों में :– मैं एक बार अर्न्तमुख हुआ तो श्री प्रभु जी का दर्शन हुआ । श्री

प्रभुजी ने पूछा– " क्या देखना चाहता है ? " मैंने प्रार्थना की– प्रभो ! कर्म और प्रारब्ध में कौन बलवान है ? " श्री प्रभु जी ने कहा कि इसका उत्तर उद्धव जी से दिलवाते हैं। इतने में श्री उद्धव जी आ गए। उन्होंने कहा– यह प्रश्न तो शिव भगवान से करना चाहिए। इतने में भगवान शिव के दर्शन हुए।

इसी बीच मैं अपना प्रश्न भूल गया और शबरी के दर्शन की इच्छा हुई। शबरी अपने आश्रम मे (झौंपड़ी) ध्यान – मग्न बैठी थी। श्री प्रभु ने कहा– इसके नेत्रों पर लक्ष्य करो। मैं उसे देखने लगा, तब वह बाग की ओर चल दी। पेड़ों पर सुन्दर व पके बेरों को वह टकटकी लगा कर देखती थी। मैंने श्री प्रभु जी से पूछा– प्रभो ! यह क्या देखती है। श्री प्रभु जी ने कहा– चलो इसके हृदय के अन्दर जा कर देखें ? हम इसकी आकांक्षा देखने लगे। जिस बेर पर उसको रामके दर्शन होते थे, उसी को चखकर देखती थी। जब बेरों का संग्रह हो गया तो कुटिया में आकर ध्यान मग्न हो गई और एक लम्बा श्वांस खींचा। श्री प्रभु जी ने बतलाया कि इसी को " कुम्भंक "कहते हैं। यह आकर्षण गुरु और ईश्वर पर भी किया जा सकता है। इतने में देखा कि शबरी के हृदय व रोम–रोम में श्री राम ही श्री राम दीख रहे हैं और वह सामने बैठ कर बेरों का भोग लगा रहे हैं।

ब्र. जी को गुरु भक्तों की गति का अनुभव

एक दिन ध्यान ": श्री प्रभु जी, भगवान श्री कृष्ण रूप में प्रकट हुए। चक्राकार प्रकाश फैल रहा था। मैंने पूछा कि प्रभु जी ! जो व्यक्ति साधन–सम्पन्न होते हैं, उनकी मृत्यु किस प्रकार होती है ? श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि ऐसे भक्तों की तीन श्रेणियाँ होती हैं :–

प्रथम :– वे जो गुरु को अपना आधार समझते हैं तथा उनमें ही विश्वास करते हैं। उनमें ध्यान–योग की सामर्थ्य नहीं होती। उनकी मृत्यु अवस्था का स्वरूप देख इतना कह कर मुझे ध्यानावस्था में ही काशी जी का एक मकान दिखाया उसमें एक व्यक्ति मरणासन्न दिखाई पड़ा। उसके नाभि के प्राण उठकर हृदय में आए। हृदय से कण्ठ में और कण्ठ से नेत्रों द्वारा बाहर निकल गए। वह भगवान बुद्ध का शिष्य था। जब मैंने उसके सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया तो उसके सूक्ष्म शरीर के सामने भगवान बुद्ध का स्वरूप था। उसका कर्म भोग नरक लोक में था। राक्षस उसके शरीर में भाले भेदते थे, किन्तु वह प्रसन्न था। उसको कष्ट नहीं हो रहाथा। न उसे भाले लगते थे, न घाव हो रहे थे। श्री प्रभु जी बोले– इसकी धारणा गुरुदेव के अन्तः करण में थी। यह इसी प्रकार वासनाओं से मुक्त होता आ रहा है। एक बार वह कुत्ता बना फिर गुरु कृपा से उसके प्राण निकल कर अगले जन्म में योगी कुल में जन्म पाया........।

दुसरे :– वह जो अपने गुरु को कर्ता–धर्ता , पुण्य फल के दाता, सब प्रकार के रक्षक, हर समय संग रहने वाले समझते हैं तथा योग भ्रष्ट हो जाते हैं। जैसे– एक मनुष्य के हृदय में प्रकाश हुआ। प्रकाश विद्युत स्वरूप में सूक्ष्म शरीर में आया। सूक्ष्म शरीर से कण्ठ में आया। फिर पिछले स्थान में आया, वहाँ से नेत्रों द्वारा बाहर आया। अब श्री प्रभु जी ने मुझे लेकर उसके सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया। मैं देखता हूँ, कि वह गुरु जी की गोद में लेटा हुआ है। सब देव–योनियों में प्रवेश करके स्वर्गादिकों को भोगता हुआ बाद में पवित्र योगियों के

कुल में जन्म लेकर मोक्षा को प्राप्त होता है।

तीसरे:– वह , जो अपने तन–मन–धन को गुरु के अर्पण कर देते हैं। संसारिक दुख–सुख से परे, योग में पूर्ण होते हैं। जैसे :– एक साधक शिष्य ने ध्यान में गुरुदेव से पूछा कि मेरे भोग संस्कार हैं या नहीं ? गुरुदेव ने कहा– अब संस्कार शेष नहीं है, शरीर छोड़ सकते हो। तब उसने गुरुदेव का ध्यान किया और प्राणों को प्राणकोष से खींच कर हृदय में आया। हृदय से प्रकाश युक्त गोल मण्डल कण्ठ में आया। कण्ठ से पीछे को गया। फिर भृकुटि में आया। भृकुटि के मध्य में एक इंच लम्बा पर्दा उठा। गोल मंडल में प्रवेश करके ब्रह्मरन्ध्र के चक्र लगाना आरम्भ किया। उसके संकल्प मात्र से ही ब्रह्म रन्ध्र फट गया और वह निराकार में लीन हो गया।

एक सिद्धयोगी श्री प्रभु जी के दर्शन को आया

एक सिद्ध योगी महाराज जी, हिमालय की गुफा से आकाश मार्ग द्वारा, श्री प्रभु जी के दर्शनार्थ एवं साधना में आई बाधा को दूर करवाने हेतु, सन्तराम धर्मशाला हाथी गेट अमृतसर आकर दिन–रात समाधिस्थ रहने लगा। सारी नगरी में चर्चा चल रही थी कि कई दिनों से समाधि में बाबा के तन पर न कोई कपड़ा है, न कोई भूख–प्यास है। नागरिक योगी के दर्शन एवं मनोकामना पूर्ती होते देख सेवा में पुष्प, फल, धन आदि रख देते पर योगी ध्यानास्थ ही रहता, किसी वस्तु को हाथ नहीं लगाता।

श्री प्रभु जी के भक्तों ने प्रार्थना की कि आपने हमें कई योगियों के बारे में सुनाया है, पर प्रभु जी ऐसा योगी आपने शायद की देखा होगा। आप कृपा करके उस योगी को देखने हमारे साथ चलें। कुछ दिनों तक भक्तों ने श्री प्रभु जी को चलने का बहुत हठ किया। तब श्री प्रभु जी भक्तों के साथ जा कर योगी की पीठ पीछे खड़े हो गए। श्री प्रभु जी के दिव्य दर्शन कर सिद्धयोगी का आसन घूमा और योगेश्वर श्री प्रभु जी को प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा कि प्रभो ! मैं अपने सत्गुरु के प्रताप से ही यहाँ आ पाया हूँ। आपने यहाँ पधारने की बड़ी कृपा की अब दया कर मेरी साधना का विघ्न अपनी कृपा से दूर कर दें। श्री प्रभु जी ने अपना आशीर्वाद देकर उसकी खेचरी मुद्रा सिद्ध करवा दी और श्री प्रभु जी की आज्ञा से आकाश मार्ग द्वारा अपनी कन्दरा में चला गया। इस अद्‌भुत घटना से श्री प्रभु जी की चरण महिमा का विस्तार सारे अमृतसर में फैल गया।

भगवान श्री कृष्ण द्वारा ब्र. जी को वरदान

एक बार ब्र. जी श्री वृन्दावन भ्रमण पर गए। वे श्री कृष्ण प्रेम में विभोर रहते थे, किन्तु रात्रि में यमुना जी की पावन बालुका में सो जाया करते थे। एक रात्रि भगवान श्री कृष्ण ने ब्र. जी को स्वयं जगा कर कहा कि – तूं यहाँ आकर भी रात को सोता है, यहाँ आकर रात को नहीं सोना चाहिए। ब्र. जी आज्ञा पा कर ध्यानस्थ हो गए। उसी रात भगवान श्री कृष्ण ने रात्री जागरण का माहत्मय बतलाया। तभी से ब्र. जी ने निद्रा पर पूरा–पूरा अधिकार पा लिया।

ध्यानावस्था में ही ब्र. जी को भगवान श्री कृष्ण जी ने दर्शन दे कर तीन वरदान

दिए:–

प्रथम :– यह कि तुमको काम वासना बाधक न होगी।

दूसरा– यह कि सर्व जगत अपने व प्रभु स्वरूप में दिखेगा।

तीसरे– यह कि तुमको हर समय आनन्द ही आनन्द का नशा होगा। ब्र. जी की मनोकामना पूर्ण हुई।

दर्शन ही दर्शन

प्रभु श्री रामलाल जी महाराज की विशेष अनुकम्पा से ब्र. जी महाराज अनेक मन चाहे दर्शनों का लाभ प्राप्त करते रहे। भगवान श्री राम, ध्रुव भक्त, महामाया कालिका और भक्त कबीर जी आदि के दर्शन कर अपनी समस्याओं का समाधान करवाते रहे। एक बार श्री प्रभुजी ने ब्र. जी को श्रद्धेय मुल्खराज जी के साथ योग प्रचार के लिए लाहौर भेज दिया। वहाँ उनका योग प्रचार इतना बढ़ा कि रात्री सत्संग में प्राय: 200 व्यक्ति भाग लेते थे जो कीर्तन करते समय बेसुध हो जाया करते थे। पश्चात यह कीर्तन शनै:–शनै: अमृतसर, लुधियाना, जालन्धर, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश आदि तक फैल गया। श्री ब्र. जी महाराज के श्री मुख से निकला कितने आज भी भारत के भक्तों में प्रसिद्ध है कि :–

गोविन्द जय जय– गोपाल जय जय।

राधा रमण हरी– गोविन्द जय जय।।

ब्र. जी का अन्तिम काल

मुरादाबाद में आपने अपने जीवन को और भी तपोमय बना लिया। माघ मास की प्रबल शीत रात्री तिमजले मकान के उपर तपश्चर्या में व्यतीत करते थे। दो मास की कठिन–तपश्चर्या के बाद वह समय आ गया, जिसका संकेत आप श्री प्रभुजी द्वारा लाहौर में पा चुके थे। उस दिन आपका मुखमण्डल अपेक्षा कृत अधिक प्रसन्न था। उस रात्रि के सत्संग में आपने सूचना दी कि आज इस शरीर का वह पूर्ण कार्य होगा जो आज तक नहीं हुआ। भक्त जन इस आशय को नहीं समझ सके। अत: सभी खुशी–खुशी प्रसाद ले कर चले गए। फिर आप ध्यानावस्थित हो गए। थोड़ी ही देर में स्वांस की उर्द्धगति हुई और आपकी आत्मा ने नश्वर देह का त्याग कर दिया और कृष्णमय होकर देव लोक वासी हुए।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

संयम द्वारा प्रातिभज्ञान तथा सिद्धियाँ

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

भौतिक विज्ञान तथा प्रातिभज्ञान में बहुत बड़ा अन्तर है। भौतिक विज्ञान के परिक्षण के लिए भौतिक साधन तथा वैज्ञानिक की बुद्धिसामर्थ्य पर निर्भरता है जबकि प्रातिभज्ञान के लिए ऐसी कोई निर्भरता नहीं है, अपितु संयम की योग्यता की आवश्यकता है। संयम की योग्यता के लिए अष्टांगयोग की सिद्धि चाहिए। भौतिक विज्ञान का क्षेत्र तथा फल दोनों सीमित हैं, जबकि प्रातिभज्ञान का क्षेत्र तथा फल दोनों असीमित तथा कल्पनातीत हैं। जब तक इन्द्रियाँ अपने विषयभोगों में आसक्त हैं और मन उनका अनुगमन करता है तथा बुद्धि मन की वृत्तियों को ग्रहण करती है तब तक सामान्य शब्दज्ञान ही रहता है तथा प्रातिभज्ञान का विकास नहीं होता, आध्यात्मिक ज्ञान भी शास्त्रज्ञान तथा महात्माओं से प्राप्त श्रुतज्ञान तक सीमित रहता है। इस ज्ञान से आत्मसाक्षात्कार सम्भव नहीं। शास्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि–

न गच्छति बिना पानं व्याधिः औषधशब्दतः।
बिना अपरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैः न मुच्यते।।

अर्थात् जिस प्रकार केवल औषधि का नाम लेने मात्र से बिना उसका सेवन किये रोग नहीं जाता यानि रोगमुक्ति नहीं मिलती, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान के शब्दों का उच्चारण करने मात्र से उसकी चित्त में अपरोक्ष अनुभूति किये बिना मोक्ष नहीं मिलता। अतः अपरोक्ष अनुभूति के लिए अष्टांगयोग की साधना की सिद्धि अत्यावश्यक है। इस साधना से चित्त में विशेष परिवर्तन होते जाते हैं, क्योंकि–

" तज्जयात् प्रज्ञालोक : "

अर्थात् योगसिद्धि से प्रज्ञालोक यानि ज्ञान चक्षु की प्राप्ति होती है, प्रज्ञा की सात प्रान्तभूमियों में विशुद्ध बुद्धि का प्रवेश होता है। योगदर्शन, का कथन है कि –

" तस्य सप्तधाः प्रान्तभूमिः प्रज्ञाः "

अर्थात् जब साधना की सिद्धि से निर्मल विवेकख्याति के द्वारा चित्त का मलावरण नष्ट हो जात है तब सात प्रकार की उत्कर्ष अवस्था वाली प्रज्ञा (विशुद्ध बुद्धि) की प्राप्ति होती है। चित्त में तीन विशेष परिणाम यानि, एकाग्रतापरिणाम, समाधिपरिणाम तथा निरोधपरिणाम प्रकट होते हैं तथा विशुद्ध बुद्धि में सात विशिष्ट अवस्थायें प्रकट होती हैं, वह हैं–

(1). ज्ञेयशून्य अवस्था जिसमें सभी ज्ञातव्य का ज्ञान प्रकट हो जाता है।

(2). हेयशून्य अवस्था जिसमें दृष्टा तथा दृश्य के एकात्मक संयोग का अभाव होने से भ्रान्तिज्ञान नष्ट हो जाता है।

(3). प्राप्यप्राप्त अवस्था जिसमें कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रहता।

(4). चिकीर्षाशून्य अवस्था जिसमें कृतार्थता की अनुभूति होती है।

(5). चित्तमुक्ति अवस्था जिसमें चित्त में संचित कर्माशय का नाश हो जाता है।

(6).गुणलीनता अवस्था जिसमें माया के गुण पुरुषार्थशून्य होकर अपनी कारणरूपा प्रकृति में लीन हो जाते हैं।

(7). आत्मस्वरूपा अवस्था जिसमें अविद्यामुक्त चित्त आत्मज्योति से प्रकाशित हो जाता है।

उपरोक्त प्रज्ञा की भूमियों में संयम करने से प्रातिभज्ञान की योग्यता प्राप्त होती है। संयम के लिए समाधिसिद्धि की योग्यता चाहिए। समाधि के भी अनेक भेद हैं। चार संप्रज्ञात समाधि हैं, दो असंप्रज्ञात समाधि हैं तथा सातवीं निर्बीज समाधि वितर्कानुगत समाधि ध्येय प्रत्यय स्थूल है तथा वह नाम, रूप तथा अर्थ के साथ अपने समस्त अंग तथा प्रत्यांगों सहित चित्त में प्रकाशित होता है। इस समाधि में ध्येय के कार्यरूप का ज्ञान हो जाता है किन्तु कारणरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। यह सब कैसे होता है इसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह अनुभूति का विषय है। बाह्य जगत में भी स्वाद जैसी अनुभूतियाँ शब्दों में पूर्णरूपेण वर्णन नहीं की जा सकती। सर्वज्ञ महर्षि पतंजलि ने इसका संकेतमात्र दिया है कि –

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु।
तत्स्थतदंजनतासमापत्तिः।।

(योगदर्शन 1/41)

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ।
निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः।।

(योगदर्शन 3/9)

अर्थात् जब ध्येयवृत्ति के अतिरिक्त सभी चित्तवृत्तियों का पूर्ण अभाव हो जाता है अर्थात् चित्त के अन्य वृत्तियों को ग्रहण करने के स्वभाव पर अवरोध का अंकुश लग जाता है, केवल चित्त के संस्काररूप धर्मों में व्युत्थान के संस्कार दब जाते हैं और केवल वृत्तिनिरोध के संस्कार विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार चित्त निरोधसंस्कारों के अनुगत ही प्रकाशित रहता है। इसे चित्त का निरोधपरिणाम कहा गया है। इस अवस्था में चित्त स्फटिक मणि की भाँति पारदर्शी तथा निर्मल होता है। जिस प्रकार स्फटिक मणि में वह सभी चित्र तथा रंग प्रवेश किये हुए से दिखाई देते हैं जोकि उसके सम्पर्क में आने वाले माध्यम में होते हैं, उसी प्रकार निर्मल चित्त में ध्येयवृत्ति का सम्पूर्ण स्वरूप, उसको ग्रहण करने की क्षमता तथा ग्रहीता स्वतः प्रकाशित हो जाते हैं। समाधि से बाहर आने पर संस्काररूपी स्मृति के द्वारा उसका ज्ञान बुद्धि में प्रकाशित रहता है। इसी को "**प्रातिभज्ञान**" कहते हैं। अतः प्रातिभज्ञान के लिए दोनों समाधि की योग्यता तथा निर्मल चित्त की आवश्यकता होती है और तदनन्तर प्रज्ञा की भूमिकाओं तथा योगा सिद्धियों में प्रवेश होता है। जब तक ध्येयवृत्ति के नाम, रूप तथा ज्ञान के विकल्प विद्यमान रहते हैं तब तक उसे सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है और जब नाम तथा रूप दोनों की विस्मृति हो जाती है और चित्त ध्ययाकार हो जाता है तब वह असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। यदि ध्येय स्थूल है तब उसे

निर्वितर्क समाधि कहा जाता है और यदि ध्येय सूक्ष्म है तब उसे निर्विचार समाधि कहा जाता है। यदि ध्येय सूक्ष्मविषय है तब ध्येय के शब्दार्थ का ज्ञान कराने वाली समाधि विचार समाधि कही जाती है। निर्विचारसमाधि में जब ग्रहीता ध्येय की भी विस्मृति कर देता है और केवल आनन्द की अनुभूति करता है तब उसे आनन्दानुगत समाधि कहा जाता है। जब आनन्द की प्रतीति भी लुप्त हो जाती है और केवल ग्रहीता का अहंभाव ही शेष रह जाता है तब वह अस्मितानुगतसमाधि कही जाती है। इन समाधियों की अवस्थाओं से गुजरने के बाद चित्त में ईश्वर का ऐश्वर्य प्रकाशित हो जाता है और योगी अचिन्त्यशक्तिमान हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने इसका संकेत दिया है कि--

निर्माणचित्तानि अस्मितामात्रात्

वहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः

तज्जयात् प्रज्ञालोकः

निर्विचारवैशारद्ये अध्यात्मप्रसादः

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्

तज्जः संस्कार, अन्यसंस्कारप्रतिबन्धी

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधन्निर्बीजः समाधिः

अर्थात अस्मितानुगत समाधि सिद्ध हो जाने के बाद योगी में चित्तनिर्माण की अद्भुत शक्ति आ जाती है। निर्मित चित्त स्वतः ही प्रकृति से मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राणशक्ति तथा स्थूल शरीर के अवयवों को आकर्षित कर लेता है, क्योंकि यह प्रकृति का स्वभाव है कि निमित्त संकल्प के द्वारा अवरोध हटते ही प्रकृति संकल्पित कार्य को तुरन्त पूर्ण कर देती है। यह सत्य कभी नहीं भूलना चाहिए कि संसार का प्रत्येक पदार्थ तथा प्रत्येक प्राणी का शरीर प्रकृति का कार्यमात्र है। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई अपादान कारण तथा निमित्त कारण है और प्रत्येक कारण किसी अन्य कारण का कार्य है। सम्पूर्ण प्रक्रिया गुणात्मक है, इसीलिए प्रकृति मूलकारण है। शास्त्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि --

ते व्यक्तसूक्ष्माः गुणात्मनः

(योगदर्शन 4/13)

ते ध्यानयोगानुगताः अपश्यन् देवात्मशक्तिः स्वगुणैर्निगढ़ाम्।

सा कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एका।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

कर्म फल

कृष्ण कुमार पाण्डेय

शास्त्र हमारे जीवन के लिए प्रमाण है। उसी के अनुसार वह जन्म लेता है। उसके द्वारा किये गये जन्म–जन्मान्तर के कर्म उसके साथ स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं। इसमें कोई अन्य सिद्धान्त नहीं लगता है। सद्गुरुदेव भगवान योगिराज श्री श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सदैव अपने प्रवचनों में इस बात को बताते रहते थे। एक बात और कर्म संस्कारों को उसी जन्म में भोग लेने की बात भी करते थे। दादा गुरु के काल के मेंडू मल्लाह का प्रसंग भी सुनाया करते थे। सिद्धगुफा सवाई धाम के साधक इसको सुने और पढ़े हुए हैं। उसकी पुनरावृत्ति उचित नहीं जान पड़ता है। इसी प्रकार योगिराज गोपालनन्द जी महाराज के संबंध में भी है। नवीन साधक को यह सब कथाए अवश्य ही धाम के पुस्तकों को लेकर पढ़ना चाहिए। इससे ऊर्जा और प्रेरणा अवश्य मिलेगी। सद्गुरुदेव भगवान ने यही बताया है कि साधक यदि गुरुदेव भगवान के बताये मार्ग का पूर्णतः अनुसरण करता है तो सद्गुरु की कृपा से बड़ी घटना छोटे रूप में फलित हो जाता है। यह लेख जब लिखा जा रहा है तो सद्गुरुदेव भगवान का सत्य रूप उपदेश करते दिखने लगता है। इससे लेखनी को भी गति मिलती जा रही है। अपने सद्गुरुदेव भगवान योगिराज श्री श्री चन्द्रमोहन जी महाराज को हम साधक समझ नहीं पाये। यह गुरुदेव की महती कृपा थी कि हमारे पात्रता के अनुसार उन्हीं की कृपा से उस शक्ति का कुछ आभास हुआ। सही अर्थो में हम ही निठल्ले निकले कि पारस मणि पाकर भी जिस प्रकार सद्गुरुदेव ने कहा– उस प्रकार बन नहीं पाये। लेकिन ऐसा भी नही कहा जा सकता है, कि सबके साथ ही ऐसा हुआ होगा। कुछ ऐसे साधक है जो इच्छित लाभ प्राप्त किये।

पद्मपुराण को पढ़ते समय जगत जननी **माता सीता का कर्मफल का एक उपाख्यान** पढ़ने को मिला। जो कर्मफल के सिद्धान्त का पुष्ट करता है। साधकों हेतु प्रेरक प्रसंग है। कुछ जानते होंगें। कुछ ऐसे भी होगें जो न जानते हों अथवा विस्मृत हो गया हो तो प्रसंग जाग्रत कर देगा। इन प्रसंगों से हम सावधान होते हैं। प्रेरित होकर यह प्रयास करते हैं कि कदाचित ऐसी भूल न हो। लेकिन जब यह कहा गया कि– **" सबहि नचावत राम गोसाई "** गीता में भी यह उपदेश है–

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्ररुढ़ानि मायया।। 18/61

अर्थात् हे अर्जुन इस शरीर रूपी यंत्र में परमात्मा बैठा हुआ वह परमात्मा सबके हृदय में निवास करता है तथा अपनी माया से उनके कर्मो के अनुसार प्रेरित कराता है। यह बात हम कलियुगी भी अपने घर में करते हैं। घर की वस्तुओं को जो जड़ और नाशवान है। उसी में फेर बदल करते रहते हैं। यदि हम अपने हृदय में बैठे परमात्मा के संकेतों को समझ कर करते तो

परमात्मा की कृपा भी रहती। इस बात को हमारे साधक साथी अनुभव करते रहते। यह अनुभव भौतिक जगत का रहा। साधारणत: हम अपने ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य माया जगत के रूपों को देखते है। जबकि हमें आन्तरिक रूप स्वरूप को देखना है। जो दिव्य और सद्मार्ग पर ले जाने वाली है। इस सब में हमारे कर्म ही साधक और बाधक होते हैं। जगत जननी माता सीता के जन्म को सब साधक भाई जानते है। महाराज जनक माता को पुत्री रूप में पाकर बड़े ही आहलादित हुए। पुत्री माता–पिता के महल में बड़े आनन्द के साथ सखियों संग पूजा–पाठ, हास–विलास में अन्त: पुर में समय व्यतीत कर रही थी। एक दिन जब वह अपने सखियों संग उद्यान में खेल रही थी। वहाँ खेलते समय शुक का एक सुन्दर जोड़ा दिखायी दिया। युगल शुक वृक्ष पर बैठकर आपस में चर्चा करने लगे कि पृथ्वी पर श्री राम नाम से प्रसिद्ध सुन्दर राजा विख्यात होंगें। वे अद्वितीय सुन्दर बलवान और बुद्धिमान दयालु और प्रजा पालक होगें। उनका विवाह सीता के साथ होगा। वे युगल सरकार पृथ्वी पर ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करेंगे। ऐसे प्रजा पालक राम और जानकी धन्य है। जो पृथ्वी पर इस प्रकार प्रजापालक के रूप में विराजेगें माता जानकी ने उनकी बातों को सुना तो आश्चर्य में पड़ गई कि ये हमारे बारे में ही बात कर रहे है। क्यों न इस जोड़ेको पकड़ कर इनसे सारा वृतान्त जाना जाए। सीता ने अपनी सखियों को आदेश दिया कि इस शुक के जोड़े को चुपके से पकड़ लाओ। सखियाँ उस युगल शुक को पकड़ लाई तथा सीता को सौंप दिया। सीता ने उन सुन्दर शुक युगल को पाकर बोली– तुमें दोनों बड़े सुन्दर लग रहे हो। तुम सब बिल्कुल नहीं डरना। मुझे तुमसे कुछ जानना है। यह बताओ तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? राम और सीता कौन है। तुम्हें इसकी जानकारी कैसे हुई कि राम सीता ग्यारह हजार वर्ष पृथ्वी पर राज्य करेंगे। सीता के इस प्रकार पूछने पर दोनों युगल शुक बताना शुरू किये। देवि वाल्मीकि नाम से एक प्रसिद्ध महर्षि है। जो बड़े ही धर्मज्ञ ज्ञान विज्ञान सम्पन्न है। हम दोनों उन्हीं के आश्रम में रहते है। महर्षि ने रामायण की सुन्दर रचना की है। जिसका नित्य आश्रम के शिष्यों को पाठ कराया जाता है। वे विद्यार्थी गुरु के साथ रामायण के पद्यों का चिन्तन करते है। जो समाज के हित में श्रेयस्कर है। रामायण की कथा बड़ी सुन्दर तथा चित्त को स्वाभाविक आकर्षित करती थी। गुरुदेव के साथ नित्य पाठ करने से हम दोनों को भी श्रवण लाभ हुआ। कथा के बार–बार अभ्यास से हमें भी सुनने को मिलता था। इसी से राम जानकी कौन है ? उनके बारे में जानकारी हुई। उसी सुनी गई कथा की जानकारी तुम्हें भी दे रही हूँ। इसे ध्यान से सुनना:–

एक बार महर्षि दिव्य श्रृग के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराया गया जिससे भगवान विष्णु ही अपने को राम , लक्ष्मण, भरत , शत्रुघ्न रूप में चार शरीर धारण कर लिया। कुछ दिन बाद राम महर्षि विश्वामित्र के साथ भाई लक्ष्मण सहित हाथ में धनुष बाण लिए मिथिला पधारेंगे। जहाँ धनुषयज्ञ होगा। जिसको तोड़कर वे जानकी को अपनी धर्मपत्नी के रूप में ग्रहण करेंगे। उसके बाद अपनी राजधानी वापस आकर अपने विशाल साम्राज्य का पालन करेंगें। इसके अतिरिक्त बहुत सी बातें हमने वहाँ निवास करते हुए सुना है। हे सुन्दरी हमने तुमको सब कुछ बता दिया। इसलिए अब हम दोनों को छोड़ दो।

जनक नन्दनी माता सीता ने सारी बातों को सुनकर आनंदित हुई। माता ने पूछा– वे राम कहाँ होगें ? किसके पुत्र है और कैसे वे दुलह वेष में आकर जानकी को ग्रहण करेंगें। सीता

की बात को सुनकर शुक युगल ने सोचा। लगता है ये ही जनक नन्दनी सीता है। वह उनके चरणों में गिर गई और बोली– श्री राम चन्द्रजी का मुख कमल की कली के समान सुन्दर होगा। उनके नेत्र बड़े विशाल खिले कमल की शोभा को धारण करने वाले होगें। दोनों ने भगवान के समस्त अंगों का सुन्दर वर्णन किया। यह भी बताया की भक्तजन उनकी सेवा में सदा संलग्न रहेंगे। श्री राम चन्द्र जी ऐसा ही मनोहर रूप धारण करने वाले हैं। हम सब तो उनका वर्णन कर ही नहीं सकते है। जिसके सौ मुँह हो वह भी नही उनके गुणों का व्याख्यान नहीं कर सकते हैं। फिर हम पक्षी की क्या औकात है। परम सुन्दर रूप धारण करने वाली लावण्यमयी लक्ष्मी भी जिनकी झांकी देखकर मोहित हो गई है। ऐसे श्री राम का कहाँ तक वर्णन करुँ। समस्त ऐश्वर्य से सम्पन्न राम सम्पूर्ण गुणों से युक्त तथा आनन्द स्वरूप है। ऐसे गुण सम्पन्न पति को प्राप्त कर वह सीता भी धन्य होगी। जो ऐसे पति को प्राप्त कर प्रसन्नता पूर्वक महलों में विहार करेंगी। परन्तु हे सुन्दरी तुम कौन हो? क्या नाम है? जो इतनी आतुरता से राम जी के गुणों को सुनकर हर्षित हो रही हो। पक्षियों की बात सुनकर सीता ने अपना परिचय दिया। अब तो तुम सब को जब राम जी हमें मिल जायेगें, तब छोडुगी। क्योंकि तुमने अपने मुख से श्री राम जी की कथा सुनाकर हमें आनंदित किया है। तुम सब हमारे साथ महल में चलकर रहो। तुम दोनों को कोई कष्ट हमारे महल में नहीं होगा। सुन्दर भोजन तुमको मिलेगा। इस बात को सुनकर शुकी ने कहा कि हे साध्वी हम सब जंगल में मुक्त रहकर निवास करते है। प्रत्येक वृक्ष पर बैठकर जंगल के आनन्द को मुक्त रूप से उपभोग करते है। तुम्हारे घर में वैसा सुख नहीं मिलेगा। दूसरे मैं गर्भिणी हूँ, अपने स्थान पर जाकर बच्चे पैदा करुगी। इसके बाद तुम्हारे पास आ जाऊँगी। ऐसा कहने पर भी सीता ने उन्हें नहीं छोड़ा। तब उसके पति शुक ने बड़े विनीत भाव से अपनी भार्या को छोड़ने के लिए निवेदन किया। हे सुमुखी यह सदैव मेरे हृदय में निवास करती मेरा मन भी इसी में लगा रहता है। जब यह बच्चों को जन्म दे लेगी तब इसे लेकर फिर तुम्हारे पास हम आ जायेंगे। जानकी ने कहा – महामते तुम को तो हम अपने महल से मुक्त करते है। मगर तुम्हारी भार्या मेरा प्रिय करने वाली है। मैं इसे अपने पास सुखपूर्वक रखुंगी। तुम किसी भी प्रकार की चिन्ता मत करो। सीता की बात सुनकर शुक बहुत दुःखी हुआ। उसने करुणायुक्त अश्रुपूरित नेत्रों से युक्त होकर बोला कि योगी लोग सत्य कहते हैं कि किसी से कुछ न कहे मौन होकर रहे, नहीं तो उन्मत्त प्राणी अपने वचन रूपी दोष के कारण ही बन्धन में पड़ता है। यदि आज हम इस जगह वार्तालाप न करते तो हम बन्धन में नहीं पड़ते। इसीलिए मौन रहना ही हम लोगों के लिए उचित था। फिर भी वह शुक माता सीता से कहा– हे देवी अपनी भार्या के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। इसलिए आप इसे छोड़ दिजिए। सीता तुम हमारी बात को अवश्य मान लोगी। शुक सीता सम्मुख विलाप करता रहा। लेकिन सीता ने नहीं छोड़ा। तब शुक की भार्या ने दुखित मन जानकी को शाप दिया। सुग्गी दुखित मन से बोली– जैसे तुम हमें इस अवस्था में हमारे प्रियतम से अलग कर रही हो वैसे ही तुझे स्वयं भी गर्भिणी अवस्था में श्री राम से अलग होना पड़ेगा। ऐसा कहकर पति वियोग के शोक से उसने अपने प्राण त्याग दिये। प्राण त्याग करते समय वह राम नाम का उच्चारण करती रही। जिससे उसे प्रभु का धाम मिला। वह देव लोक के विमान से परमधाम को जाने का सौभाग्य मिला।

पत्नी की मृत्यु के वियोग को न सह पाने वाला शुक शोक से भरकर कहा– मैं मनुष्य

होकर अयोध्या में जन्म लूंगा तथा मेरे ही वाक्य के उद्वेग में पड़कर तुम्हें भी वियोग का भारी दु:ख उठाना पड़ेगा। यह कहकर वह भारी मन से वहाँ से चला गया। सीता के अपमान करने के कारण उसे क्रोध आ रहा था। वही राम राज्य में अयोध्या में धोबी की योनि में जन्म लिया। जो लोग बड़े लोगों की बुराई करते हैं। वह द्विजो में श्रेष्ठ ही क्यों न हो मरने के बाद वह नीच योनि में जन्म लेते है। यही उस तोते के साथ भी फली भूत हुआ। उसी धोबी के कहने से सीता जी निन्दित हुई और उन्हें पति से गर्भिणी अवस्था में वियोग दु:ख सहना पड़ा। इसीलिए उस धोबी की निन्दा से वन में भयंकर कष्ट सहना पड़ा। जो उनके द्वारा किये गये कर्मो के फलस्वरूप दु:ख प्राप्त हुआ।

इस उपाख्यान से कर्मफल सिद्धान्त, सत्य निष्ठा, प्रेम की प्रतिष्ठा तथा पूर्ण समर्पण की सीख मिलती है। जो हमारे जीवन को सद्‌मार्ग में प्रेरित करेगा। उस शुक का अपनी शुकी के प्रति प्रेम है। प्रेम वस्तुतः पूर्ण समर्पण का स्वरूप है। हम लोगों का प्रेम बहुत कुछ आडंबर से युक्त होता है। इसीलिए प्रेम भावना से युक्त होकर जीवन पथ पर बढ़ना होगा। प्रेम के संबंध में कबीर ने कहा है-

प्रेम-प्रेम सब कोई कहै प्रेम न चीन्हें कोय।
जा मारग साहिब मिले प्रेम कहावै सोय।।
प्रेमी ढूढ़ते मैं फिरूं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी सो प्रेमी मिलै, विष से अमृत होय।।

ऐसे उपाख्यान हमारे शास्त्रों में उपलब्ध हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मो का फल सुख और दु:ख के रूप अवश्य ही प्राप्त होता है।

जिस व्यक्ति को इस बात का भान हो जाता है कि सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला परमेश्वर मुझ में वास करता है, तब उसकी समस्त कामनायें नष्ट हो जाती हैं जब उसे ज्ञात हो जाता है कि वह मैं ही हूँ जो सब कामनाओं को तृप्त करता है, तब उसके जीवन में अशान्ति नहीं रहती। उसे शाश्वत् शान्ति, अखण्ड शान्ति, परम शान्ति का लाभ होता है। परमात्मा और अपनी आत्मा के अद्वैत का ज्ञान प्राप्त हुए बिना शान्ति उपलब्ध होना सर्वथा असंभव है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरु-भक्ति ही सच्ची सिद्धि

श्री अन्तू राम यादव

प्रातः स्मरणीय आनन्द–धाम, करुणा सागर, सर्व–समर्थ, परम अन्तर्यामी, योग योगेश्वर अनन्त श्री दादा गुरु देव एवं सद्गुरुदेव भगवान के कमलवत् चरणों में कोटिशः नमन। आइए गुरुभक्ति के बारे में कुछ चिन्तन करें।

गुरु भक्ति की व्याख्या सन्तों ने एवं ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार से की गई है। जिसे लेकर कभी–कभी, विशेष रूप से नये साधकों में, उहापोह की स्थिति पैदा हो जाती है कि आखिर गुरु भक्ति है क्या ? इस उहापोह को यथा सम्भव दूर करना ही प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य है। आशा है नये साधकों को कुछ न कुछ इससे अवश्य प्रेरणा मिलेगी।

श्री सद्गुरुदेव के प्रति प्रगाढ़ अनुराग ही तो अध्यात्म साधना की घनीभूत ऊर्जा है। जिसके अन्तस में इस महाऊर्जा का घनत्व जितना अधिक है, वह अध्यात्म पथ पर उतना ही अधिक तीव्रता से गतिशील होता है। साधक चाहे भले ही कितना जप–तप अथवा कर्मकाण्ड करता रहे, जो विद्वान हैं, विवेकी हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि साधना के सभी कर्मकाण्ड स्थूल देह के कलेवर का निर्माण भर कर सकते हैं। उस कलेवर में प्राण का संचरण तो केवल गुरु भक्ति से ही होता है।

गुरु–भक्ति से ही साधकों को यह बोध होता है कि तुम इधर–उधर क्यों भटक रहे हो, क्यों व्यर्थ में परेशान हो ? परम कृपालु गुरुदेव को होते हुए तुम्हें किसी तरह से भटकने अथवा परेशान होने की जरूरत नहीं है। समस्याएं भौतिक हों या आध्यात्मिक, लौकिक हों या अलौकिक, गुरु–भक्ति से ही यह ज्ञान होता है कि गुरु चरणों में इन सभी समस्याओं का समाधान अन्तर्निहित है। साधक के अन्तर्मन में ज्यों–ज्यों गुरु–भक्ति प्रगाढ़ हो तो जाती है, उसका अन्तःकरण ज्ञान के प्रकाश से भरता जाता है। उसके हृदय में केवल एक ही सत्य भाषित होता है– " गुरु–कृपा ही केवलम्। " साधकों के लिये गुरु भक्ति अमृत–सरोवर है जिसके अवगाहन से सहज ही गुरु–कृपा प्राप्त हो जाती है और यही गुरु कृपा साधक के लिए अन्तिम पुरुषार्थ यानी मोक्ष का मार्ग प्रशस्थ करने में सहायक होती है।

देवाधिदेव महादेव माँ भगवती पार्वती से कहते हैं कि मुनि, नाग एवं देवों के शाप से, काल और मृत्यु के भय से केवल गुरुदेव ही शिष्य की रक्षा करने में समर्थ हैं परन्तु जो गुरुदेव के शाप से ग्रस्त हैं, उनकी रक्षा कोई भी देवता अथवा मुनि नहीं कर सकते। जो तार्किक हैं, वे इस सत्य को शायद ही छू पायें, परन्तु जिन्होंने अपनी अन्तर्यात्रा में गुरु एवं गुरु–भक्ति की महिमा को जाना है, वे भगवान शिव के इस कथन को पल–पल पीते हैं। इस अनुभव को साकार करने वाली एक बहुत ही मर्मस्पर्शी घटना का वर्णन किया जा रहा है, जो एक शिष्य के जीवन में तब घटित हुई, जब उसका अपने आराध्यदेव गुरुदेव से प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं हुआ था।

विद्यार्थी जीवन में उस शिष्य का परिचय एक अघोर साधक से हुआ। यह अघोर साधक कई आश्चर्य जनक सिद्धियों–शक्तियों का स्वामी था। एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ में बदल देना उसके लिए सामान्य बात थी। मिठाई को विष्ठा बना देना और सड़े माँस को सुगंधित, सुरभित मिष्ठान में परिवर्तित कर देना उसके लिए पलक झपकाने भर का काम था। अपनी उन सारी शक्तियों के बावजूद वह अघोर साधक बहुत व्यथित एवं पीड़ित रहा करता था। यहाँ तक कि कभी – कभी आकाश की तरफ देखते हुए उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती थी।

एक दिन उस विद्यार्थी ने उस अघोर साधक से पूछा– बाबा ! आप बीच–बीच में इतने दुखी क्यों हो जाते हैं ? आपके पास तो इतनी सिद्धियाँ हैं, फिर भी आप क्यों रोने लगते हैं ? जबाव में बिलखते हुए उसने कहा– बेटा ! तू शायद अभी नहीं समझ पायेगा। पर चल तुझे बताकर अपना मन हल्का कर लेता हूँ। तू पूछता है तो सुन– मेरा भगवान मुझसे रूठ गया है। मेरा गुरु मुझसे नाराज है। मेरे गुरु ने मुझे एक हजार वर्ष तक भटकते रहने का शाप दे दिया है। बाबा की ये अटपटी बातें उस विद्यार्थी के पल्ले नहीं पड़ीं। उसने बस यूँ ही पूछा– बाबा ! आप को भटकते कितने साल हो गये ? बाबा ने बड़े इत्मिनान से जवाब दिया– सात सौ पचास साल।

बाबा के इस जबाव ने उस विद्यार्थी को और गहरी हैरानी में डाल दिया। उसने कहा– पर आप तो केवल पचास–साठ साल के लगते हैं। यह बात सुन कर वह जोर से हँसा और बोला– अरे, मैं इस शरीर की बात नहीं कर रहा हूँ। इस शरीर की उम्र तो इतनी ही होगी। मैं अपनी बात कर रहा हूँ। मेरा शरीर जब पुराना हो जाता है, तब मैं उसे छोड़कर किसी युवा– मृत शरीर में प्रवेश कर जाता हूँ। साँप काटे हुए व्यक्ति को प्रायः लोग बहा देते हैं। ऐसे ही शरीर को मैं अपना बना लेता हूँ।

उस विद्यार्थी ने बाबा से पूछा– आप के गुरु आप से नाराज क्यों हुए ? गुरु तो बड़े कृपालु होते हैं। तब उस अघोर साधक ने बताया– बेटा! मुझे अपनी साधना और सिद्धियों का भारी घमण्ड हो गया था। यहाँ तक कि मैं अपने को भगवान मानने लगा था। इसी घमण्ड में मैंने एक दिन अपने गुरु को भी खरी–खोटी सुना दी। इस बात पर नाराज होकर गुरु जी ने मुझे एक हजार साल तक भटकने और सिद्धियों के दंश को झेलने का शाप दे दिया। बस, बेटा तब से मैं नये–नये शरीरों में रहते हुए सिद्धियों के शाप को झेल रहा हूँ।

वह अघोरी साधक ने अपनी बात कहते हुए उस विद्यार्थी के सिर पर प्यार से हाथ रखा और बोला– बेटा! आगे कुछ सालों के बाद तुझे तेरे गुरु मिलेंगे। तू कभी भी उनकी बात की अवहेलना मत करना। उनकी सब बातें मानना और सिद्धियों के जाल में कभी मत उलझना। सबसे सच्ची सिद्धि तो गुरु भक्ति ही है। जिसे यह मिल गई, समझो उसे सब कुछ मिल गया।

उस विद्यार्थी ने पूछा– बाबा ! इस गुरु भक्ति रूपी सिद्धि को प्राप्त करने का उपाय क्या है ? तब बाबा ने बताय बेटा गुरुसेवा ही साधना है। गुरु सेवा का अर्थ है– गुरुदेव जो कहें, जैसा भी काम सौंपे, वैसा ही करना। चाहे वह आदेश अनुकूल लगे अथवा प्रतिकूल। कहने का तात्पर्य यह है कि गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना ही गुरुदेव की सच्ची सेवा है। शिष्य का हर कार्य गुरुदेव की प्रसन्नता के लिए ही होना चाहिए। शिष्य के किसी कार्य से अगर गुरुदेव नाराज हो गये तो तीनों लोकों में उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं मिलेगा और उसे वैसे ही भटकना

पड़ेगा जैसे मैं भटक रहा हूँ।"

बाबा का यह उपदेश हम सभी साधकों के लिए एक चेतावनी है। सद्गुरुदेव भगवान से निम्नांकित निवेदन करते हुए लेखनी को विराम दिया जा रहा है–

" नजरों से गिराना न, चाहे लाख सजा देना।

नजरों से जो गिर जायें, मुश्किल है संभल पाये।। "

सादर जय गुरुदेव !

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्री मद्भगवद् गीता में सनातन का वर्णन

आचार्य रामलाल जी महाराज

आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने गीता का उपदेश अर्जुन को दिया था। महाभारत का ही अंश है गीता और महाभारत को पाँचवा वेद कहा गया है।

आज कल सनातन पर बहुत चर्चा हो रही है। कुछ विधर्मी लोग सनातन को नष्ट करने की बात कहते हैं। ये लोग अज्ञानी हैं शास्त्रों का कोई ज्ञान नहीं है अकारण ही बकवास करते रहते हैं।

हम गीता में स्थल स्थल, पर हुये सनातन की चर्चा यहाँ कर रहे हैं।
गीता जी में भगवान कहते हैं—

बीजं माम् सर्व भूतानाम् विद्धि पार्थ सनातनम् यह सातवें अध्याय का दसवां श्लोक है जिसमें भगवान कह रहे हैं कि वे सर्व प्राणियों के सनातन बीज हैं जो कभी नष्ट नहीं होते हैं।

इसी प्रकार से गीता के ग्यारहवें अध्याय के अठारहवें श्लोक में अर्जुन भगवान् की स्तुति करते हुये कहते हैं।

लमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परम निधानम्
त्वमव्ययः शाश्वत धर्म गोप्ता
सनातनस्वं पुरुषो मतो में।

अर्थात् आप ही परम अक्षर परमात्मा ही वेद के द्वारा जानने योग्य हैं। वेद का प्रतिपाद्य विषय हैं। आप ही शाश्वत एवं गुप्त धर्म के ज्ञाता हैं आप ही सनातन पुरुष परमात्मा हैं। विश्व के आधार हैं।

ये सनातन पुरुष ही वेद व अन्य धर्म ग्रन्थों में पुरुषोत्तम के नाम से प्रख्यात हैं।

ये सब कुछ प्रमाण हैं जिससे सनातन की अवधारणा पुष्ट होती है और इसे शाश्वत अर्थात् कभी न मिटने वाला धर्म या तत्व माना गया है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

ईश्वर-प्रणिधान से समाधि-लाभ

श्री मनमोहन कृष्ण मिश्रा

किसी भी क्षेत्र में शिक्षा प्राप्त करने के लिये एक सुनिश्चित कोर्स करना पड़ता है। योग के विद्यार्थी को भी समाधि-लाभ करने के लिये एक कोर्स को पूरा करना होता है। योग के विद्यार्थी को पहले अपने मन को एकाग्र करके इन्द्रियों का साक्षात्कार करना चाहिये, इन्द्रियों के पश्चात् मन, मन के बाद बुद्धि और बुद्धि के बाद आत्म-साक्षात्कार करे। भगवान श्रीकृष्ण ने योगियों के कोर्स को इन शब्दों में कहा है-

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो, बुद्धेः परतस्तु सः।

इस लिखे कोर्स का अनुसरण करने से कोई भी व्यक्ति समाधि तक अवश्य ही पहुँच सकता है। फिर भी भगवान पतंजलि ने सर्व साधारण के लिये समाधि-लाभ का एक सरल उपाय समाधि पाद के 23 वें सूत्र में बताया है। वह है-

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।। 1/23।।

इस सूत्र का व्यास-भाष्य इस प्रकार है-

प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वर-स्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण।

तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतमस्समाधि लाभः,समाधिफलञ्च भवतीति।

इस सूत्र का अर्थ है कि ईश्वर-प्रणिधान से भी समाधि आसन्न होती है। ईश्वर, जो भक्ति विशेष से जाना जा सकता है। ध्यान करने वाले योगी पर अनुग्रह करता है और उसे समाधि-लाभ प्राप्त होता है। हृदय के अन्तरतम् प्रदेश मे ईश्वर की सत्ता का अनुभव करते हुए आत्म-निवेदनपूर्वक उसी पर निश्चिन्त रहना भक्ति या प्रणिधान का स्वरूप है। यहाँ भक्ति विशेष का अर्थ है- निरन्तर प्रभु का चिन्तन व ऐसी भक्ति को जिसमें तन, मन, बुद्धि-अहंकार आदि सब ईश्वरार्पित कर दिया जाता है और जिसमें यह भावना परिपक्व हो जाती है कि सब कुछ ईश्वर का ही है, ईश्वर-प्रणिधान कहा गया है। ऐसा अनुभव करना कि सभी कार्य ईश्वर द्वारा प्रेरित होकर हो रहे हैं। ऐसी स्थिति तभी आती है जब साधक अहंभाव का त्याग करके अपने जीवन के प्रत्येक कर्म एवं उसके फल को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दे। प्रणिधान तब सिद्ध हुआ माना जायेगा, जब साधक अहंकार रहित होकर सबमें अपने आप को देखे और अपने आप में सबको देखे। संसार की प्रत्येक वस्तु में उसे भगवान के ही दर्शन होते हैं।

एक महान् भारतीय सन्त का उदाहरण यहाँ बिल्कुल उपयुक्त प्रतीत होता है। वह अपनी रोटी बना रहे थे। जो रोटी उन्होंने बनाकर एक ओर रखीं, वह एक कुत्ता उठा कर ले गया। अब कुत्ता आगे-आगे और संत पीछे-पीछे। सन्त के हाथ में घी की कटोरी है और वे कह

रहे हैं – भगवन् ! रुक तो जाओ, रोटी सूखी है, चुपड़ लेने दो, फिर खा लेना। यह ईश्वर–प्रणिधान के सिद्ध होने का एक प्रमाण है। उन संत को कुत्ते में भी ईश्वर का आभास हुआ। उसी प्रकार से मीरा की भी सभी दिशाओं में और सभी वस्तुओं में अपने कृष्ण के ही दर्शन होते थे। उनके लिए पूरा जगत् ही कृष्णमय था। इसी प्रकार से गोस्वामी तुलसीदास जी को जड़–चेतन संसार भगवान् राम का स्वरूप ही दिखाई देता था। बालकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं–

दोहा

जड़ चेतन जग जीव जे, सकल राममय जानि।

बन्दौ सबके पद-कमल, सदा जोरि जुगपानि।।

गोस्वामी जी कहते हैं कि संसार में जितने भी जड़ और चेतन जीव हैं, उनको राममय जानकर दोनों हाथ जोड़कर सदा प्रणाम करता हूँ। इसके आगे गोस्वामी जी ने निम्नलिखित चौपाई में भी यही भाव प्रकट किये हैं –

आकर चार लाख चौरासी।

जाति जीव नभ-जल-थल बासी।।

सियाराममय सब जग जानी।

करों प्रणाम जोरि जुगपानी।।

–बालकाण्ड 1–2

अर्थात् जीवों की चार खानि हैं और उनमें चौरासी लाख भेद हैं और वे जल, भूमि और आकाश में रहने वाले हैं। सब संसार को सीताराममय जानकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। यह विशेष भक्ति या ईश्वर–प्रणिधान का एक उपयुक्त उदाहरण है। जिसमें गोस्वामी तुलसीदास जी को पूरा जगत् ही राममय दिखाई देता है। यह स्थिति तभी प्राप्त होती है जब साधक अपने शरीर, इन्द्रियों, मन, प्राण, बुद्धि तथा इनसे होने वाले कर्म एवं उनके फलों को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दे। योग–योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने भी आत्म–समर्पण की यही व्याख्या दी है–

यत्करोसि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

–गीता 9–27

अर्थात् जो भी कार्य तू करता है, जो खाता है, हवन करता है, दान करता है और जो तप करता है, वह सब मुझ (ईश्वर) को अर्पण कर दे। क्योंकि ऐसा करने से तू शुभ और अशुभ कर्मों के बन्धनों से मुक्त हो जायेगा और तू मुझको प्राप्त होगा। यहाँ मुझको (ईश्वर) प्राप्त होने का ही अर्थ है– समाधि–लाभ।

भगवान् श्रीकृष्ण जी ने ईश्वर–प्रणिधान को भगवान–प्राप्ति का उपाय बताते हुए

कहा है–

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैव, मात्मानं मत्परायण:।।

–गीता 9–34

अर्थात् तुम मुझमें ही मन लगाओ, मेरे ही भक्त बनो, मेरा ही (ईश्वर का) पूजन करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस प्रकार मेरी शरण होकर आत्मा को मुझमें ही समाहित करके तुम मुझको (समाधि–लाभ) ही प्राप्त होंगे। गीता के 18 वें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा है–

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि सत्यं ते, प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुच:।।

–गीता 18/65–66

हे अर्जुन ! तुम अपना मन केवल मुझमें ही रखो, मेरे ही भक्त बनो, मेरी ही पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। ऐसा करने पर तुम मुझे ही प्राप्त होंगे। यहाँ 'मुझे ही प्राप्त होंगे ' का अर्थ समाधि–लाभ से ही है। हे अर्जुन ! यह मैं तुम्हें सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे बहुत प्यारे हो। सब धर्मों का आश्रय छोड़ कर तुम मेरी ही अनन्य (एकमात्र) शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापों से छुड़ा दूँगा। तुम किसी भी प्रकार की चिन्ता न करो। यह है आत्म–समर्पण या ईश्वर–प्रणिधान का फल जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के नवें अध्याय में यह भी कहा –

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य, येऽपि स्यु: पापयोनय:।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।

किं पुनर्ब्राह्मणा: पूज्या, भक्ता राजर्षयस्तथा।

अनित्यमसुखं लोकमिम्, प्राप्य भजस्व माम्।।

–गीता 9/32–33

अर्थात् हे अर्जुन ! मेरे अनन्य शरण होने से स्त्री, वैश्य और शूद्र तथा चाण्डाल आदि पाप योनि वाले भी परम गति को प्राप्त होते हैं। फिर पुण्य योनि ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तों, जो मेरी शरण में आते हैं, की बात ही क्या है। इसलिये तुम इस अनित्य और सुखरहित मनुष्य जन्म को पाकर निरन्तर मेरा ही भजन करो। भगवान श्रीकृष्ण जी ने यहाँ ईश्वर–प्रणिधान को समाधि–प्राप्ति (ईश्वर–प्राप्ति) का उपाय न केवल पुण्य योनियों के लिए बताया है, अपितु इसे पाप–योनि जीवों के लिये भी भगवत्–प्राप्ति या समाधि–लाभ का सरल उपाय बताया है।

अत: योग–मार्ग के साधक जो शीघ्र समाधि–लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, उन्हें

ईश्वर को सर्व शक्तिमान एवं सर्वव्यापी समझ कर अपना शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार एवं सभी कर्म और उनके फल उनके चरणों में समर्पित कर देने चाहिए, भगवान् श्रीकृष्ण जी का वचन है कि ऐसा करने पर अवश्य ही साधक को समाधि–लाभ होगा।

क्या परमात्मा पक्षपाती है ?

- स्वामी विवेकानन्द -

यह सृष्टि किसने की? ईश्वर ने। अंग्रेजी में 'गॉड' शब्द का जो प्रचलित अर्थ है, उससे मेरा मतलब नहीं। निश्चय ही उस अर्थ में नहीं, बल्कि उससे काफी भिन्न अर्थ में प्रयोग का मेरा अभिप्राय है। अंग्रेजी में और कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। संस्कृत 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग करना ही सबसे अधिक युक्तिसंगत है। वही इस जगत्–प्रपंच का सामान्य कारण है। ब्रह्म क्या है? वह नित्य, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ, परम दयामय, सर्वव्यापी, निराकार, अखण्ड है। वह इस जगत् की सृष्टि करता है। अब यदि कहें कि यही ब्रह्म संसार का नित्य स्रष्टा और विधाता है, तो इसमें दो आपत्तियाँ उठ खड़ी होती हैं। हम देखते हैं कि जगत् में पक्षपात है। एक मनुष्य जन्मसुखी है, तो दूसरा जन्मदु:खी; एक धनी है तो दूसरा गरीब। इससे पक्षपात प्रतीत होता है। फिर यहाँ निष्ठुरता भी है, क्योंकि यहाँ एक जीवन दूसरे के मृत्यु के ऊपर निर्भर करता है। एक प्राणी दूसरे को टुकड़े–टुकड़े कर डालता है और हर एक मनुष्य अपने भाई का गला दबाने की चेष्टा करता है। यह प्रतिद्वन्द्विता, निष्ठुरता, घोर अत्याचार और दिन रात की आह, जिसे सुनकर कलेजा फट जाता है– यही हमारे संसार का हाल है। यदि यही ईश्वर की सृष्टि हुई तो वह ईश्वर निष्ठुर से भी बदतर है, उस शैतान से भी गया – गुजरा है, जिसकी मनुष्य ने कभी कल्पना की हो। वेदान्त कहता है कि यह ईश्वर का दोष नहीं जो जगत् में यह पक्षपात, यह प्रतिद्वन्द्विता विद्यमान है। तो किसने इसकी सृष्टि की? स्वयं हमीं ने। एक बादल सभी खेतों पर समान रूप से पानी बरसाता रहता है। पर जो खेत अच्छी तरह जोता हुआ है वही इस वर्षा से लाभ उठाता है। एक दूसरा खेत जो जोता नहीं गया, या जिसकी देखरेख नहीं की गयी, उससे लाभ नहीं उठा सकता। यह बादल का दोष नहीं। ईश्वर की कृपा नित्य और अपरिवर्तनीय है; हमीं लोग वैषम्य के कारण हैं। लेकिन कोई जन्म से ही सुखी है और दूसरा दुखी, इस वैषम्य का कारण क्या हो सकता है? वे तो ऐसा कुछ नहीं करते जिससे यह वैषम्य उत्पन्न हो। उत्तर यह है कि इस जन्म में न सही, पूर्व जन्म में वैषम्य उन्होंने अवश्य किया होगा, और यह वैषम्य पूर्व जन्म के कर्मों के ही कारण हुआ है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

मन रूपी दर्पण

श्रीमती सरिता भारद्वाज

मन एक दर्पण के समान है। दर्पण का काम है वस्तु के स्वरूप का यथार्थ बोध करा देना। दर्पण शब्द बहुत सार्थक है। जो दर्प अर्थात् घमण्ड को न रहने दे वह दर्पण होता है। महाराजा दशरथ विषय भोगों और राज सत्ता के रागरंग में अपनी असलियत को भूले हुए थे। एक दिन उन्होंने हाथ में दर्पण लेकर रौब से देखा। दर्पण ने उनका अज्ञान चूर–चूर कर दिया। उन्होंने देखा–

श्रवण समीप भयउँ सित केशा।

कानों के समीप बाल सफेद हो गये हैं, मानो वृद्धावस्था का स्पष्ट संकेत हो रहा है। अब **'सब तजि हरिभज '** का समय जान दशरथ के मन में विषयों से वैराग्यभाव का उदय हुआ। नारद जी विश्वमोहनी के स्वयम्वर में अकड़ कर बैठे हुए थे। उनके मन में गलत–फहमी थी, कि विश्व में वे सबसे अधिक सुन्दर हैं। जब हरि के गण उनकी ओर कनखियों से बार–बार देखकर मुस्कराये तो नारद जी को क्रोध आया।' इन मूर्खों की ये जुर्रत कि मेरा मजाक उड़ायें ?' जब उन्होंने दर्पण देखा तो **'मर्कट बदन भयंकर देही'** बानर की आकृति देखकर तन बदन में आग लग गई और यथार्थ को स्वीकार करने की अपेक्षा निज अज्ञानवश भगवान विष्णु को शाप दे डाला। मन का दर्पण जगत और जगदीश्वर दोनों को दिखाने वाला होता है। ज्ञान रूपी नेत्रों से मनरूपी दर्पण में समस्त विश्व के कार्य तथा कारण सूक्ष्म तन्मात्रा, अन्तःकरण चतुष्ट्य मूल प्रकृति पर्यन्त सब कुछ देखकर निस्त्रैण्यता की ओर गमन किया जाता है। तभी जन्म–मरण तथा कर्म जाल की कारण भूता अविद्या का नाश होता है। अविद्या की निवृत्ति ही योग की स्थिति है।

जब आँखों से दिखाई न पड़ता हो तथा मन रूपी दर्पण भी गंदा हो तो फिर स्वरूप की पहिचान कैसे हो सकती है। गोस्वामी तुलसीदास जी एक अर्धाली में योग का पूरा सिद्धान्त कह देते हैं:–

नयन अंध मन मुकुर मलीना।

राम रूप देखहिं किमि दीना।।

प्रभु दर्शन या आत्म साक्षात्कार के लिए दो आवश्यकतायें हैं एक बुद्धि सूझबूझ वाली, विमल विवेक युक्त हो दूसरे मन विषयों की धूल से मलिन न हो। दोनों में से एक चीज की भी कमी होगी तो गाड़ी बीच में अटक जायगी। दर्पण का स्वभाव वस्तु के रूप को दिखाना है। मन जब इन्द्रियों के साथ जुड़ जाता है तो इन्द्रियों को विषय लोलुप बना देता है जैसे मृग रेगिस्तान में रेत की लहरों को जल समझकर व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार मन विषयों में सुख शान्ति

और आनन्द का आभास कर इन्द्रियों तथा बुद्धि को भ्रमित कर डालता है। दर्पण की एक और विशेषता है, दर्पण दोष देखने के काम आता है, वह आदर्श कहा जाता है। वह बता देता है कि कहाँ क्या कमी है? प्राय: मनरूपी दर्पण दूसरों के दोष देखने का काम किया करता है। सुबह से शाम तक हमारा मन रूपी दर्पण दूसरों के दोषों को देखने से मैला होता रहता है। मन का सबसे निकट का सहायक रसना है। मन के इशारे पर रसना भी परनिन्दा में बहुत रस लेती है। जब दो लोग मिलते हैं तो जब तक किसी के निन्दा के कुछ शब्द न कहलें तब तक दिल को तसल्ली नहीं हो पाती। आजकल निन्दा रस सबसे मधुर रस माना जाता है।

परनिन्दा सम अध न गिरीशा।

इस अर्धाली के एक अंश में गोस्वामी ने कहा है कि परनिन्दा से दूसरे का कुछ भला नहीं होता हाँ अपना मन दूसरे के दोषों के सूक्ष्म परमाणुओं से अवश्य गन्दा हो जाता है। मुकुर का स्वभाव है कि वह दूसरों के दोष देखना जानता है अपने पीछे पीठ पर लगी हुई गन्दगी को नहीं जानता। यदि अपने दोषों को दर्पण देख सके तो मन की एकाग्रता तथा चित्त की शुद्धि आसानी से सम्भव हो सकती है। सन्त कबीर आदि ने इसी रहस्य को सीधे-सीधे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है-

बुरा जो देखने मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजूँ आपणा, मुझ से बुरा न कोय।।

अपनी पहचान ही सच्ची पहचान है। यही आत्म साक्षात्कार है अपने मन की जाँच पड़ताल, उठते, बैठते, सोते, जागते, चलते-फिरते करते रहने से मन रूपी दर्पण में ठीक-ठीक प्रतिविम्ब दिखाई पड़ेगा। जब तक मन रूपी दर्पण इस प्रकार न हो जाय कि बाहर और भीतर ऐ जैसा दिखाई पड़ने लग जाय,मन-वाणी और कर्म में कोई अन्तर न रहे; तब तक मन पर कतई भरोसा नहीं किया जा सकता। क्योंकि यह मन बहुत बड़ा बहुरूपिया है। क्षण में ज्ञानी, क्षण में योगी, क्षण में चोर और क्षण में साधु बनकर संस्कार चक्र घुमाता रहता है। जो कोई साधक श्री गुरु-चरणों की अनन्य भक्ति से इस मन की चाल पहिचान लेता है वह इसके पीछे का मैल साफ कर इसे पारदर्शक बना लेता है। जीवन्मुक्ति का आनन्द साफ मन में ही प्राप्त होता है। राम चरित मानस में कहा है।

निरमल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

मन जब मलिन होता है तभी कपट, छल छिद्र, दम्भ, पाखण्ड आदि विकार घेर लेते हैं मन की मलिनता जब तक दूर नहीं होती तब तक साधक सहज तथा सरल नहीं बन पाता। बिना सहज तथा सरल बने सहज एवं अविनाशी का साक्षात्कार नहीं हो पाता। गीता में भगवान ने दैवी सम्पत्ति के प्रसंग में साधक की एक दैवी सम्पत्ति '**आर्जव**' बताई है। आर्जव का अर्थ है सरलता, निष्कपटता।

सहजै सहज मिलै रघुराई।

जीवन्मुक्त के स्वरूप का विवेचन करते हुए मोक्ष शास्त्रों में दर्पण की एक सुन्दर उपमा आती है। शिष्यों ने गुरुदेव से पूछा– 'प्रभु जीवन्मुक्त होने पर जीवन कैसा हो जाता है ? ' गुरुदेव ने कहा– " प्रिय ! जिस प्रकार निर्मल दर्पण के पीछे रत्न की ज्योति रखी हो तो वह जैसे हर समय साफ–साफ झलकती है बाहर और उस आत्मा की ज्योति के बीच में झीना–झीना मन रूपी दर्पण का परदा (प्रारब्ध कर्मभोग) रहता है। लेकिन वह भी इतना निर्मल होता है कि लगता ही नहीं जैसे बीच में कोई परदा हो ? " जो अपने मन–मुकुर को संस्कारों की गंदगी से हर समय झाड़–पौंछ कर साफ सुथरा करते रहते हैं उनका मन एक दिन ऐसा ही बन जाता है कि वे इस जीवन में ही योग की सविकल्प तथा निर्विकल्प भूमिकाओं में अक्षय आनन्द का अनुभव कर लेते हैं। ऐसे पुण्यात्मा जीवन्मुक्त बन जाते हैं।

मन की मलिनता कैसे दूर हो? इसकी मलिनता दूर करने के लिए लोग तरह–तरह के वेश बनाते हैं, व्रत, उपवास तथा तीर्थ करते हैं। इनसे कुछ–कुछ सफाई होती है, वह भी तब जब इन साधनों में सोलह आना दृढ़ विश्वास हो। देखा देखी से कुछ अधिक लाभ नहीं होता। हाथी जैसे स्नान कर साफ हो जाता है फिर कुछ ही देर में सिर पर धूल डालकर जैसे का तैसा बन जाता है। उसी प्रकार तीर्थ व्रत करते समय मन लगता है, जैसे पूर्ण संत बन गया हो किन्तु मौका मिला नहीं कि परनिन्दा, विषय वासना, कामक्रोध लोभ के पीछे कुत्ते की तरह भागने वाला बन जाता है। तब तक मन पर पूर्ण सद्गुरु की कृपा नहीं होती जब तक यह ज्ञान वैराग्ययुक्त होकर शौचाचारयुक्त नहीं बन पाता। गोस्वामी जी मन मुकुर की सफाई का अनूठा उपाय बताते हैं:–

श्री गुरुचरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।

शीशे की सफाई रजकणों से करते हैं उससे शीशा साफ दमकने लगता है। श्री गुरुदेव के चरणकमल की रज से जब यह मन मुकुर मांजा जायगा तो इसकी मलिनता दूर हो जायगी। मन जितना कोमल और नाजुक है–शीशे से भी ज्यादा नाजुक है। किसी की याद में ही टूट कर बिखर जाता है– उसकी सफाई के लिए उसी तरह की कोमल रज चाहिए। कमल के पराग से कोमल क्या वस्तु होगी ? श्री गुरुदेव के चरण कमलों, के पराग से मन मुकुर साफ होगा। कैसे होगा ? 'सुधारि' अच्छी तरह हृदय मन्दिर में चरणकमलों को धारण करने से। अपने मन को चरणकमल के पराग का लोभी भौंरा बना देने से। श्रीगुरु चरणों का ध्यान करने से। क्योंकि ध्यान का मूल आधार '**ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोर्पदम्** ' श्री गुरुदेव के चरणकमल हैं। उनका दिव्यवपु ध्यान का मुख्य साधन और साध्य है। चरण कमल पूजा के मूल में सिद्धि के हेतु है। गोस्वामी जी सिद्धयोगी थे। अतः उन्हें भगवान शंकर जी की कृपा शक्ति के पात से–साधना के सभी रहस्य स्पष्ट अनुभव अभ्य हो गये थे। उन्होंने सिद्धयोग के साधकों के लिए एक अचूक, अमोघ–रामवाण औषधि ढूँढ निकाली– श्री गुरुदेव के चरणों की निष्काम भक्ति, ध्यान तथा गुरुपदिष्ट मंत्र का सतत जप। उसी से दिव्य दृष्टि पाकर साधक अपने मन चित्त तथा बुद्धि में संस्कार चक्रों का दर्शन कर सारे संस्कारों को भोगकर खत्मकर सकता है और इसी जन्म से जीवन्मुक्त हो सकता है। श्री गुरुदेव के चरण–कमलों की रज नेत्रों को दिव्य दृष्टि प्रदान करने वाली है–

श्री गुरुपद रज मणिगण ज्योती।

सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।।

तथा–

गुरुपद रज मृदु मंजुल अंजन।

नयन अमिय दृग् दोष विभंजन।।

नेत्रों का दोष भ्रम, संशय तथा मिथ्या प्रतीति है। यदि नेत्रों में पीलिया हो जाय तो हर चीज पीली ही पीली नजर आती है। इसी तरह जब अज्ञान और अविद्या के कारण ममता मोह तथा अहंकार तथा कामनायें नेत्रों को अंधाकर देती हैं। वस्तु के यथार्थ स्वरूप को ढककर अन्यथाभास होने लगता है। इसे वेदान्त की भाषा में आवरण तथा विक्षेप कहते हैं। आवरण तथा विक्षेप ही नेत्रों का अन्धापन है जिसके मूल में कामनाओं का वृत्ति प्रवाह रहता है। गोस्वामी जी इसलिए कहते हैं–

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही।

तथा–

ममता तिमिर तमी अँधियारी।।

ममता, अहंता तथा स्वार्थ वस्ता अपने दोष न देखकर दूसरों में दोष देखने का आदी बना देती है। कहा जाता है कि– " **अर्थी दोषं न पश्यति** " ममता वश व्यक्ति को अपने गुण ही दिखाई पड़ते हैं और दूसरों के अन्दर दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं। जब साधक पर गुरु कृपा होती है तब उसका हृदय दूसरों के गुण देखता है और अपने अन्दर के दोष ढूंढ–ढूंढ कर निकाल देता है। यदि कूड़ा कचड़ा दबाकर रखा जाएगा तो एक दिन सड़कर रोगी मर सकता है। यदि मन के दोषों की कड़ी जांच पड़ताल होती रही, – प्रतिदिनआत्म निरीक्षण, संध्या सम्यक् धारणा ध्यान होता रहे तो मन की दौड़ कम होने लगती है। मन बहिर्मुखता से मुड़कर अन्तर्मुखी बनने लगता है जिससे बुद्धि तथा चित्त का साथी बन जीवन के कर्त्तव्य का ठीक–ठीक बोध करा दिया करता है। मन पर मंत्र का पहरा बैठाना जरूरी है। खाली मन शैतान का अड्डा। वृत्ति संस्कार चक्र जप द्वारा बदलता है। यदि क्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार प्रवाहित हो रहे हैं तो जप तथा ध्यान से वृत्ति चक्र ठहर जायगा। यदि धारणा और ध्यान समाधि में परिणत होने लगता है तो उस समय ध्येय रूप के गुणों का प्रवाह चल पड़ेगा। ध्यान होगा ही सतोगुण की बढ़ी हुई दशा में। अत: यह निश्चित है कि समाधि दशा में सतोगुणी वृत्तियों का सबल प्रवाह होने से अक्लिष्ट वृत्तियों के संस्कार उदित होकर सुख और शांति का अनुभव होगा। गुरुपदिष्ट मंत्र का मनोजय कर मन को उसके अर्थ में भावविभोर कर लेने पर मन का दर्पण उजला बन जायगा। सन्त रज्जब ने नाम जप तथा ध्यान को मन की निर्मलता के लिए परमावश्यक माना है :–

' नाम बिन मन निर्मल नहि होय '

आन उपाय अनन्त अध लागैं,

बहुत भांति कर जोय।
योग यज्ञ जप तप व्रत संयम,
करते हैं सब लोग।।
धर्म नेम दान पुनि पूजा,
मुक्त सुन्या न कोय।
ज्ञानी गुणी शूर कवि पण्डित,
ये बैठे सब रोय।।
मरम न भूल समझ सुन प्राणी,
यहु साबुण नहिं सोय।
जन रज्जब मन होय न निर्मल,
जल पाखाणहि धोय।।

जप और ध्यान से मन में आत्म–प्रकाश हो जायगा फिर जीवन गुणग्राही बन जायगा। मन बुरा सोचने और बुरा करने से स्वयं भाग खड़ा होगा। जीवन में पुण्य कर्मों की बाढ़ आने लगेगी। हर क्षण हर घड़ी चारों ओर आनन्द की वर्षा होनी शुरू हो जायेंगी। यह जगत विषम ज्वाला से जलते जंगल से बदल कर कुसुमित नन्दनवन बन जायगा जहाँ जीवन और मृत्यु दोनों के ही महोत्सव लगने लगेंगे।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

सिद्धयोग

श्री श्री शंकर पुरुषोत्तमतीर्थ स्वामी

एक समय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने देवाधिदेव महादेव से प्रश्न किया–

सर्वे जरवाः सुखैर्दुः खैर्मायाजालेन वेष्टिताः।

तेषां मुक्तिः कथं देव कृपया वद शंकर।।

सर्वसिद्धिकरं मार्ग मायाजालनिकृन्तनम्।

जन्ममृत्युजराव्याधिनाशनं सुखदं वद ।।

(योगशिखोपनिषद्)

हे शंकर ! सब जीव सुख–दुःख रूप मायाजाल से घिरे हुए हैं। हे देव ! कृपया मुझसे यह कहिये कि इनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है ? ऐसा एक उपाय बतलाइये जिससे सब सिद्धियाँ प्राप्त हों, मायाजाल कट जाये और जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि का नाश हो जाये। इसके उत्तर में भगवान महादेव ने विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा से कहा–

नानामार्गैस्तु दुष्प्रापं कैवल्यं परमं पदम्।

सिद्धिमार्गेण लभते नान्यथा पद्मसम्भव।

(योगशिखोपनिषद 1/3–4)

हे पद्मसम्भव ! कैवल्यरूप परम पद की प्राप्ति के अनेक उपाय कहे गये हैं ; किन्तु उन समस्त उपायों से उसे प्राप्त करना सहज नहीं। एकमात्र सिद्धिमार्ग के द्वारा ही कैवल्य पद आसानी से प्राप्त होता है। अन्य प्रकार से नहीं प्राप्त होता। कैवल्य प्राप्ति ही मानव जीवन का उद्देश्य है। कैवल्य मुक्ति होने पर ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। दुःख नष्ट हो जाने पर पुनः उसकी उत्पत्ति न होने को ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति कहते हैं। कैवल्य या मोक्ष प्राप्त होने पर जीव को पुनः जन्म–मृत्यु–जरा– व्याधिजनित दुःख नहीं भोगने पड़ते। इसे प्राप्त करने का सहज पथ सिद्धिमार्ग या सिद्धयोग है।

यह सिद्धिमार्ग क्या है, यहाँ इस बात का विशदरूप से वर्णन करना आवश्यक है। जिस पथ से बिना कष्ट के योग प्राप्त होता है, उसी पथ को सिद्धिमार्ग कहते हैं। योगरूप सिद्धि प्राप्त करने का पथ सुषुम्ना नाड़ी है, जब इस नाड़ी से प्राणवायु प्रवाहित होकर ब्रह्मरन्ध्र में जाकर स्थित होता है तब साधक को जीव–ब्रह्मैक्य–ज्ञानरूप योग प्राप्त होता है। सर्वप्रथम गुरु द्वारा शक्ति का संचार होने पर कुण्डलिनी–शक्ति जागरित होती है ; और उसके बाद क्रमोन्नति के द्वारा योगलाभ होता है। जिस तरह तुम्हें बरतन, लकड़ी, जल और अग्नि इत्यादि किसी चीज को परिश्रम करके जुटाना नहीं पड़ता, केवल दाता की कृपा से ही उसके घर में तैयार अन्न से ही तुम्हारी क्षुधा शान्त हो जाती है, उसी तरह तुम्हें परिश्रम करके सब योगों की आधारस्वरूपा

मूलाधारस्थिता कुण्डलिनी–शक्ति को जागरित करने के लिए योगशास्त्रोक्तआसन, मुद्रा और प्राणायामादि कुछ भी अस्वाभाविक ढंग से अनुष्ठान करने की जरूरत नहीं, केवल गुरुशक्ति के प्रभाव से ही कुण्डलिनी– शक्ति के जागरित हो जाने से स्वाभाविक रूप में योग मार्ग प्राप्त हो जाता है। इसी को ' सहज कर्म ' कहा गया है। स्वभाव से जो होता है, वही वास्तव में सहज है। स्वाभाविक और अस्वाभाविक भेद से योगपथ दो प्रकार का है। उनमें अस्वाभाविक उपाय कष्टसाध्ये है, अर्थात् जो स्वभावतः होता है, वही अनायाससाध्य और सुखद है, तथा उसमें किसी तरह की विपत्ति की भी सम्भावना नहीं। देखो, जब स्वभावतः हमें निद्रा, क्षुधा और मलमूत्रादि का वेग होता है तब सो जाने, भोजन कर लेने और मलमूत्रादि त्याग देने से शारीरिक स्वस्थता तथा मानसिक आनन्द का अनुभव होता है। किन्तु निद्रा की इच्छा न मालूम होने पर भी जबर्दस्ती सो रहने से सुषुप्ति के स्थान में स्वप्न आया करता है और उससे शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता का अनुभव होता है। भूख नहीं है, फिर भी भोजन कर लिया, तो उससे अजीर्णतादि दोष के कारण शरीर में रोग होने की सम्भावना रहती है। भूख न रहने पर भोजन करने से वह उतना रूचिकर भी नहीं मालूम होता। मलका वेग नहीं हुआ, फिर भी काँखकर मल त्याग किया, इससे भविष्य में गुह्य रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है; किन्तु वेग होने के बाद मल त्याग करने पर शारीरिक और मानसिक आराम मालूम होता है। उसी तरह अन्तःकरण में स्वाभाविकरूप से आसन, मुद्रा और प्राणायामादि करने की इच्छा होने पर और उसके अनुसार क्रिया करने पर वह सहज और शान्तिप्रद हो जाती है। स्वभाव से ही जो हो जाता है, उसमें बाधा डालने पर अनिष्ट की सम्भावना रहती है। जैसे, शोक में जिस समय रूलाई आती है, उस समय उसमें बाधा उपस्थित होने पर हृदय में भयानक चोट लगती है; किन्तु रो लेने पर शरीर और मन हल्का मालूम होता है। मल मूत्रादि का वेग होने पर उसे रोक लेने से दुःख होता है और रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है; किन्तु उसका त्याग करते ही आराम मिलता है। उसी तरह गुरुशक्ति के प्रभाव से स्वभावतः जो आसन, मुद्रा और प्राणायाम आदि तथा नाना प्रकार से अंगसंचालन आदि करने की इच्छा होती है, उसमें उस समय बाधा डालने पर मानसिक अशान्ति मालूम होती है और शरीर को भी अच्छा नहीं मालूम होता।

जिस तरह वायु, पित्त और कफ इन तीनों के स्वभाव में विषमता होने पर वैद्य के बतलाये हुए औषध, पथ्य का व्यवहार करके स्वभाव की सहायता करने पर शरीर स्वभावतः ही नीरोग हो जाता है, उसी तरह सद्‌गुरु की कृपा से शक्तिसंचार के द्वारा सिद्धिमार्ग प्राप्त होने पर एकमात्र गुरुपदिष्ट मंत्रजप या ध्यान के द्वारा ही स्वभावतः आसन, मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान इत्यादि सब योगाङ्ग अनायास साधित हो जाते हैं, इसके लिये विशेष परिश्रम करने या चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं होती, अथवा गुरु से इन सब आसन, मुद्रा और प्राणयाम आदि का स्वतन्त्ररूप से उपदेश लेने की भी जरूरत नहीं होती।

इसी पथ से क्रमशः अग्रसर होते–होते साधक शीघ्र ही योगसिद्धि प्राप्त करके कृतार्थ और धन्य हो जाता है। इस उपाय से स्वभावतः योगांगादि साधन क्रम से जीव और ब्रह्म का ऐक्यज्ञान अथवा अखण्ड–चैतन्यानुभूति होती है और इसे सिद्धिमार्ग या सिद्धयोग कहते हैं। परन्तु यह शक्तिसम्पन्न सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त होने पर ही सम्भव है।

सिद्धयोग हिन्दी मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4 नियम 8 के अन्तर्गत

01.	प्रकाशन का स्थान	-	श्री सिद्धगुफा सवांई, आगरा (उ.प्र.)
02.	प्रकाशन का अवधिक्रम	-	मासिक
03.	मुद्रक का नाम	-	नकुल शर्मा
	राष्ट्रीयता	-	भारतीय
	पता	-	प्रिंट पोइन्ट, आगरा
04.	प्रकाशक का नाम	-	सिद्धगुफा प्रकाशन
	राष्ट्रीयता	-	भारतीय
	पता	-	श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (आगरा)
05.	सम्पादक का नाम	-	आचार्य डॉ. दासलाल शर्मा
	राष्ट्रीयता	-	भारतीय
	पता	-	श्री सिद्धगुफा सवांई, आगरा
06.	स्वत्वाधिकारी	-	श्री सिद्धगुफा सवांई
			आचार्य दासलाल

मैं आचार्य दासलाल यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

कृते सिद्धगुफा प्रकाशन

24-02-2024

प्रकाशक

समय की ज्वलंत आवश्यकता

'हममें से कुछ लोग इस सांसारिक प्रपंच से अलग रहें और केवल परमात्मा के लिये जीवित रहें। संसार के लिये धर्म की रक्षा करें। यदि वैराग्य धारण करो तो दृढ़तापूर्वक डटे रहो। यदि इस युद्ध में सैकड़ों गिर जायें तो भी पताका को थामे रहो और बढ़ते जाओ। चिंता नहीं कौन गिरता है ? सत्य संकल्प के पीछे भगवान स्वयं विद्यमान हैं। जो गिरे वह पताका को दूसरे हाथों में सौंप दे और तब वह कभी नहीं गिर सकेगी। जीवन की क्षुद्र मर्यादाओं में बंधे ये बेचारे गृहस्थ कर ही कितना सकते हैं? यह सन्यासियों का कार्य है, शिव के गणों का कार्य है कि आकाश को 'हर! हर!' के निनाद से गुंजायमान कर दें।

मेरी समस्त भावी आशा उन युवकों में केन्द्रित है– जो चरित्रवान हों, बुद्धिमान हों, लोकसेवा के हेतु सर्वस्व त्यागी और आज्ञापालक हों, जो मेरे विचारों को क्रियान्वित करने के लिये और इस प्रकार अपने तथा देश के व्यापक कल्याण के हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकें। यदि मुझे नचिकेता की श्रद्धा से सम्पन्न केवल दस या बारह युवक मिल जायें तो मैं इस देश के विचारों और कार्यों को एक नयी दिशा में मोड़ सकता हूँ।

जिनमें मुझे कुछ अधिक क्षमतायें दीख पड़ती हैं उनमें से कुछ विवाह के बंधन में बंध गये हैं। कुछ ने स्वयं को नाम प्रतिष्ठा या धन कमाने के लिए बेच डाला है और कुछ शरीर से दुर्बल हैं। शेष, जिनकी संख्या अधिक है, किसी उच्च भाव को ग्रहण करने में ही समर्थ नहीं हैं।

मैं चाहता हूँ– लौह पेशियाँ और इस्पात के स्नायु, जिनके भीतर उसी धातु का बना मानस रहता है, जिनका वज्र बनाया जाता है। शक्ति, पौरुष, क्षात्रवीर्य, ब्रह्मतेज। हमारे सुन्दर होनहार युवकों के पास ये सब चीजें हैं–यदि केवल उन्हें उस क्रूरता की वेदी पर – जिसे वे विवाह करते हैं–बलि न किया जाय। हे भगवान मेरी पुकार सुनो– कुछ को इस विवाह से बचा रहने दो। उन्हें केवल ईश्वर के लिए जीने दो, ताकि ये दुनियाँ के लिए धर्म की रक्षा कर सकें। निस्सन्देह क्योंकि ईश्वरीय इच्छा से इन्हीं लड़कों में से कुछ समय बाद आध्यात्मिकता और कर्म-शक्ति के महान पुंज उदित होंगे जो भविष्य में मेरे विचारों को क्रियान्वित करेंगे।'

– स्वामी विवेकानन्द

प्रधान कार्यालय

सिद्धयोग

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एल्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री/सुश्री ____________________

____

____

□□□□□□

गुरुर्देवो गुरुर्धर्म गुरुर्निष्ठा परंतपः
गुरोः परतरं नास्ति सत्यं सत्यं वरानन

गुरु देव है, गुरु धर्म है, गुरु निष्ठा ही परम तप है, गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। हे सुन्दर मुखवाली पार्वती !
यह सत्य है, सत्य है।